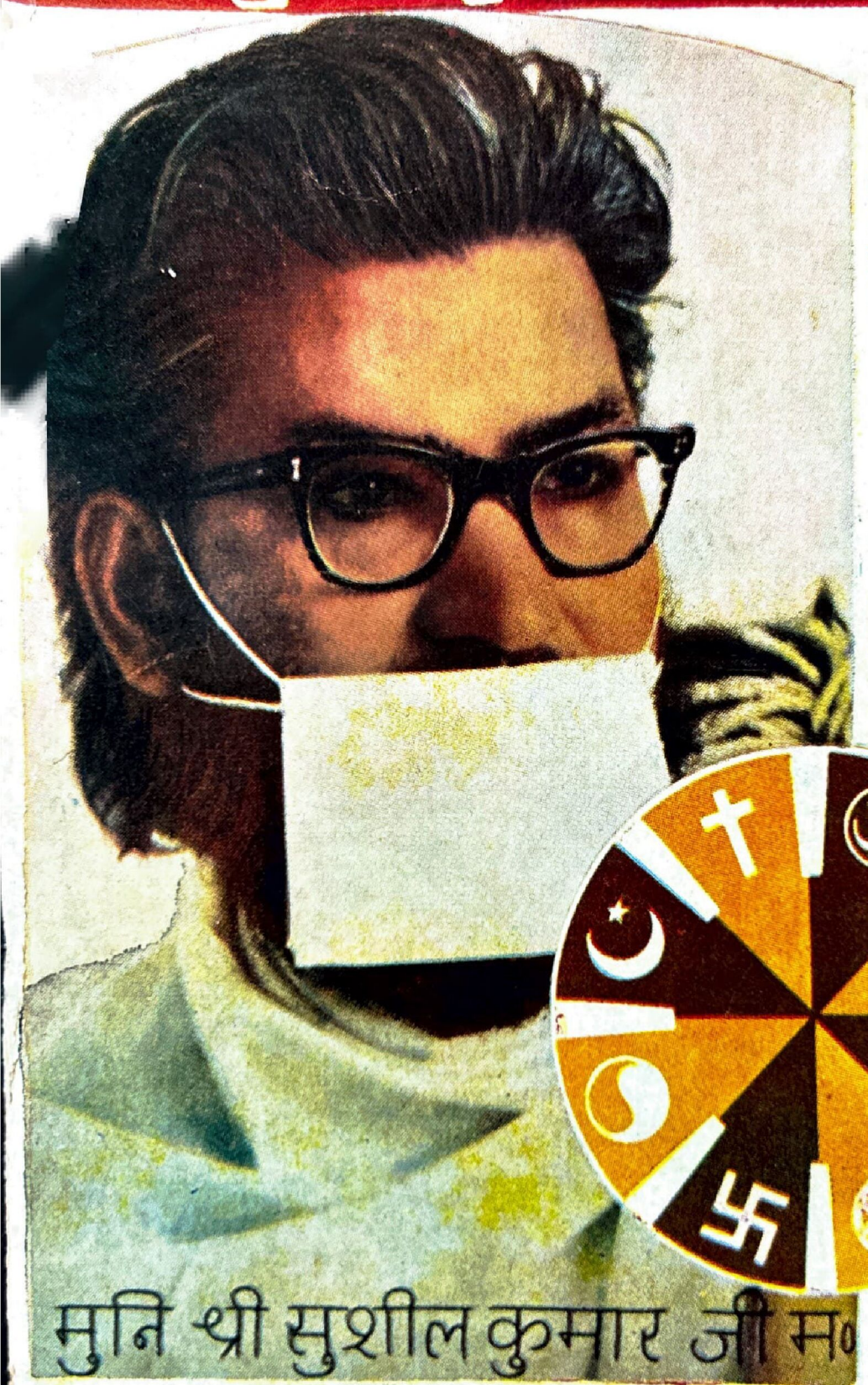


अहिंसा परित्राजक मुनिश्रोष्ठ सुशीलकुमार जी महाराज



मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज

पावनचरित्रः सुखदृष्टि वाणी

से समस्तविश्व में अमण कर मानव मात्र को मार्गदर्शन कराने की
अर्पित गाथा.

●
राष्ट्र गौरव मंडित है कि उसकी धरती से मुनि सुशील कुमार जी जैसे तपः पूत 'संत' गौरव मुनि श्रेष्ठ सुशील कुमार जी ने मानवमात्र के हित के लिये मर्यादाओं की उपेक्षा करके सुदूर समुन्द्र पार अहिंसा की ददंभी बजा दी है ।

विश्व ही नहीं, चर अचर को जियो और जीने दो का सिद्धान्त । भगवान महावीर की वाणी और अहिंसा का गौरव का सन्देश देकर मुनि सुशील कुमार जी ने वास्तविक अहिंसा परिव्राजक का दायित्व निभाया है ।

विश्व कृतज्ञ है और दया से अभिभूत करुणामयी ओजस्वी वाणी उनके जीवन में परिवर्तन लाने के लिये कृत संकल्प है । उनकी महान् आत्मा के जीवन और दर्शन से सम्बन्धित यह पुस्तक हर धर की शोभा और हर मन की खुशी सिद्ध होगी ।

पढ़िये 'मनन' करिये और अन्य को पढ़ने को प्रोत्साहित कीजिये ।

अहिंसा परिव्राजक मुनि श्रेष्ठ



श्री सुशील कुमार जी महाराज

अहिंसा परिव्राजक मुनिश्री सुशील कुमार जी
प्रेरक :

मुनि श्री सुभाग जी महाराज

●
प्रकाशक : नरेश चन्द्र जैन अध्यक्ष

कमला पॉकेट बुक्स, मेरठ

●
संयोजक : जय प्रकाश शर्मा

मूल्य—तीन रुपये

मुद्रक :

मैसर्स पीयूष प्रिन्टर्स,
३२, शिवाजी मार्ग, मेरठ
फोन : ७५०३०

AHINSA PRIVARJAK MUNISRI SUSHEEL KUMAR JI

प्रकाशकीय

इसे मैं एक बहुत बड़ा संयोग और शुभयोग ही मानता हूँ कि तीर्थंकर भगवान महावीर के परिनिर्वाण समारोह के सम्पन्न होने के साथ देश में अनुशासन पर्व का शुभारंभ हुआ और प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कोटि-कोटि भारतीयों के लिये २० सूत्रीय कार्यक्रम का श्री गणेश किया। ऐसे सुअवसर पर जब मुनि श्री सुशील कुमार जी विश्व को अहिंसा का संदेश देकर पुनः भारत आ रहे हैं तो हम आदरणीय मुनिवर सुभाग जी की कृपा से पांच पुस्तकें आपको भेंट कर रहे हैं। इस पुस्तक माला के संयोजक देश के जाने माने राष्ट्रीय उपन्यासकार श्री जय प्रकाश शर्मा हैं, इन पुस्तकों के आवरण-शिल्पी श्री सुबोध मिश्रा हैं। समस्त मित्रों के सहयोग से ये पुस्तके उस पुण्य भूमि को समर्पित है, जहां राम, कृष्ण, महावीर, महात्मा गांधी, मुनि सुशील कुमार और देश-गौरव प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ-साथ हम सबने जन्म लिया।

प्रकाश

कमला पॉकेट बुक्स

५६-शीश महल, मेरठ

अध्यक्ष

नरेश चन्द जैन

गरिमा दर्शन

महान् सन्त गरिमापूर्ण औचित्य के लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं। क्योंकि सन्त और वादल दोनों एक श्रेणी के उपकारक हैं। उपकार की पराकाष्ठा का जो उदाहरण महाराजा शिति ने प्रस्तुत किया था, उससे बड़ा उदाहरण मुनि श्रेष्ठ सुशील कुमार जी ने प्रस्तुत किया; जब वे अहिंसा का मर्मस्पर्शी संदेश देने के लिये सात समुन्द्र पार संयुक्त राज अमेरिका पहुंचे।

उनका पावन चरित कितना निर्मल और ओज भय है, इसकी कल्पना उन्हीं को हो सकती है, जिन्होंने इसे अनुभव किया हो। एक महान् लेखक ने उनके विषय में लिखा था:—

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवर्तित अक्षुण्ण श्रमण-परम्परा के मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज २० वीं शताब्दी के विद्यमान प्रकाश स्तम्भ हैं। वे एक विरत, निःस्पृह, संयमशील और सच्चारिण्य के धारक मनस्वी सन्त हैं, जिन्होंने यौवन के प्रारम्भ के पहले ही किशोरावस्था में संसार के वैभव-विलास और माया-मोह को छोड़ कर चिरकालीन उदानीनता का महापथ का अनुसरण किया और नाना प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए सम्प्रदाय, जाति, धर्म, भाषा, समाज और वर्ग के अनेकानेक विषम कंटकों से भरे मार्ग का

अपनी अद्भुत क्षमता से परिष्कार कर राजमार्ग का निर्माण किया, जिसका अनुसरण कर आने वाली पीढ़ियां जीवन और जगत् की वास्तविकता से परिचय प्राप्त कर सकेंगी और उनके जीवन-यापन की पद्धति का पथ अधिकाधिक प्रशस्त, समुज्ज्वल, बाधारहित एवं सरल होगा। आज भारत में मानव समाज को सही नेतृत्व प्रदान करने वाले सन्तों में मुनिश्री सुशील कुमार जी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। अपने आध्यात्मिक जीवन में मानवमात्र के कल्याण का ज्योतिकलश लेकर चलने वाले मुनि श्री का वचस्व न केवल भारत अपितु विश्व-मानव ने एक स्वर से स्वीकार किया है। राजनीति का नेता हो, चाहे आध्यात्मिक सन्त, व्यापारी हो अथवा व्यवहारवादी समाज शास्त्री—सबने आपकी गरिमामय जीवन-सारणि से पूर्णता एवं अभिवृद्धि का मंत्रस्वर ग्रहण किया है। दूसरों के प्रति शिरीषकुसुम से भी कोमल और अपने लिए वज्र से भी कठोर मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का लोकोत्तर चरित्र जन-जन के लिए वंदनीय है। भगवान् महावीर ने चण्ड कौशिक को विष के बदले अमृत का दान दिया, महात्मा गांधी ने अपने हत्यारे नाथू राम गोडसे को किसी प्रकार पीड़ित न करने को कहा, महात्मा ईसा ने अपना वध करने वाले लोगों के लिए कहा कि हे ईश्वर, इन्हें क्षमा करना क्योंकि ये नहीं जानते कि इनका कर्तव्य क्या है। इसी प्रकार उदारमना मुनिश्री के जीवन में अनेक ऐसे प्रसंग आए जहाँ उन्होंने बुराई का प्रतिकार भलाई से कर के अपने हृदय की विशालता, सहिष्णुता और अहिंसावादिता का परिचय दिया। बहुत कम ऐसे लोग मिलते हैं जो ख्याति एवं सिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने के बाद भी इतने विनम्र, सरल और

निरभिमानी रहे हों। सुलसी दास ने कहा भी है:—‘प्रभुता पाई काहि मद नाही’ किन्तु मुनिश्री सुशील कुमार जी ने प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में जहां मान और दम्भ का प्रश्न आया, अपनी ऋजुता और दम्भराहित्य का ही परिचय दिया है। महाश्रमण मानतुंगाचार्य ने कहा है:—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ।

—हे भगवान् इस संसार में बहुत-सी माताओं ने सैकड़ों पुत्रों को जन्म दिया किन्तु किसी भी मां ने तुम्हारे सदृश पुत्र को जन्म नहीं दिया। सारी दिशाएँ किरणों को धारण करती हैं किन्तु अनन्त किरणों के धारक सूर्य को तो केवल पूर्व दिशा ही जन्म देती है। भगवान् आदिनाथ के सम्बन्ध में कही गई यह उक्ति बहुत अंशों में मुनिश्री के सम्बन्ध में भी घटित होती है। संसार के मनीषी वैज्ञानिक अलबर्ट आइस्टाईन ने महात्मा गांधी के सम्बन्ध में कहा है—“भावी पीढ़ियां कठिनाई से विश्वास करेंगी कि गांधी जैसा हाड़-मांस का पुतला इस पृथ्वी पर कभी विचरा था।” आइन्स्टीन की यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। अध्यात्म की यह चलती फिरती प्रतिमा विश्व में किस के लिए वरणीय नहीं है ! धर्म और समाज के यथातथ्यपरक नेतृत्व को अपने भीतर समाहित करते हुए शांतिप्रियता गुण-आहकता, विद्वत्ता, लोकप्रियता, आदर्शवादिता और वैराग्य-सम्पन्नता से मंडित यह तितिक्षु जब चलता है, करोड़ों लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं।

दर्शक यह कहने के लिए बाध्य हो जाता है:—

चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर ।
गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर ॥

सम्मोहक व्यक्तित्व, आयामरहित गति और भविष्य के स्वर्णिम सपनों की मशाल लिए चलने वाला साधुमना जननेता जब किसी उद्देश्य के प्रयाण के लिए चलता है तो लगता है जैसे त्रिभुवनविजयी आनन्द का कुसुमशर लिये चल रहा हो और सारा चातावरण किसी विशेष प्रकार के माधुर्य, सात्विक मादकता, और सम्मोहन का शिकार हो गया हो ।

महापुरुषों के जीवन की यह स्वाभाविक नियति हुआ करती है कि वे अवढरदानी की तरह प्रत्येक याचक की भोली भर देते हैं किन्तु अपने न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें अकिंचन्य स्वीकार करना पड़ता है । मुनिश्री सुशील कुमार जी भी ऐसे ही अकिंचनव्रतधारी अनगार हैं । अनेक प्राणियों की तृषा को अपनी अपार करुणा के अमृत से भिगो देने वाला संबुद्ध जब सामान्य के सामान्यतर के समक्ष अपनी भोली फैलाता है तो लगता है, विश्वभर मिक्षु की लीला कर रहा है । ज्ञान की सम्पूर्ण गरिमा को धारण करने वाला जन-जन के प्रति जब अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है तो लगता है कि सरस्वती का अमृतपुत्र अज्ञान का शोधन करने में लगा है । न जाने कितने प्रतिमान विभूषित होते हैं, मुनिश्री सुशील कुमार के व्यक्तित्व से !

पैगम्बर मुहम्मद जब इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, युग-मानस ने उनके प्रति सामान्य जन का व्यवहार किया । महावीर ने जब कैवल्य की अपरिमित चेतना-सत्ता को धारण किए हुए अपने आप को जन-सामान्य के बीच प्रस्तुत किया तो उनकी वाणी का

नाना रूपों में अर्थानियन हुआ । सुकरात ने जब अपने सात्विक नीति और सत्यतापूर्ण उपदेश के लिए छल-छन्दरहित बाल-योगी के रूप में अपने को प्रस्तुत किया, विभ्रान्त जन-समाज के बीच उन्हें विषपान करना पड़ा । आखिर शिव के अतिरिक्त कौन ऐसा दिगम्बर हो सकता था जो अमृत कलश को विलगा कर त्रैलोक्य के कल्याण के लिए विषघट को अपने भीतर उतार ले ? जन-स्वस्ति के इन्हीं मानदण्डों में से एक मानदण्ड हैं—मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज, मानव की संपूर्ण इयत्ता को अपने अन्तर्जगत् में देवतुल्य स्थान प्रदान कर निर्धन की कुटिया से राजमहल तक बंधुत्व और प्रेम का अलख जगाने वाला तरुण सन्यासी अपने जीवन की अग्निवीणा पर जब स्वर-लहरियों को उतारता है तब तमसामृत दोनों का संसार आलोकित हो उठता है । फिर भी इस देवपुरुष को सन्तोष नहीं होता । वह कहता है—

गिर चुके फूल हैं डाली के, बुझ चुके दीप हैं थाली के ।

बनमाली तेरी पूजा का मैं दूजा क्या सामान करूं ॥

अथवा राम के प्रति व्यक्त किए गए गोस्वामी तुलसीदास के कथन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाये तो कहना पड़ेगा :

जो गति जोग विराग यतन करि नहि पावत मुनि ग्यानी ।

सो गति देत गीध सबरी को प्रभु न अधिक जिय जानी ॥

जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहं लीन्हों ।

सो सम्पदा विभीषण कहे अति सकुहं सहित हरि दीन्हों ॥

देने वाले तो इस संसार में बहुत हैं किन्तु ऐसा दाता कौन होगा जो याचक को देकर आपको उसका कृतज्ञ माने और याचक को यह अनुभव हो—

‘तुम सो जो मांगनों न मांगनों कहायो है ।

दीन-दुखियों की करुण पुकार सुनकर नंगे पांव चल पड़ने वाले प्राणिवत्सल का जीवनव्रत ही जब ऐसा हो तो उसकी उपमा संसार में सिवाय भागवत् चेतना के और कहाँ मिलेगी ? मैं नहीं मानता कि नर को नारायण के रूप में इतनी बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला सन्त अपने प्रति इतना उदासीन हो सकता है कि अपनी भूख-प्यास, निद्रा, सुख आदि शारीरिक आवश्यकताओं का उसे भान ही न रहता हो । आत्मजागृति के क्षणों में मानव-जाति का यह कल्पतरु कोटि-कोटि वसंत अपने परिवेश में लेकर चलता है और यश का एक भी सौरभकरा अपने मानसिक शरीर पर झिल्लट नहीं होने देता । जिसने अज्ञान के घोर तमस् में भटकती हुई पीढ़ी के मार्ग को प्रकाशित करने के लिए अपने आपको दिन-रात दीपक की तरह जलाया किन्तु जिसे दीपक होने का भान न हुआ । जो प्रत्येक तत्त्ववेत्ता के लिए सुधानिधि होते हुए भी आत्मनिवेदन के क्षणों में सामान्यतम घटक के रूप में अपने आपको स्वीकारता है । उसके स्तवन के लिए शब्द की कौन-सी कोटि समीचीन होगी ! अनेकानेक जन-प्रतिमाओं को जिसने चैतन्य बनाया उस चेतन सत्ता को क्या नाम दें ! आस्था और विश्वास के रजत लोक में मुझे जब किसी उपमान की खोज होती है, मैं अपने आप को असमर्थ पाता हूँ । हिंसा, शोषण, कदाग्रह, अज्ञान, अन्याय, अत्याचार, पीड़ा और राग-द्वेष से पूर्ण जगत् के बीच जब अनन्य प्रेम की इस अखंड शलाका की ओर दृष्टि जाती है तो आशा की असंख्य किरणें एक मनोभूमि में कौंध जाती हैं और लगता है कि इस अभागे युग के भाग्य को संवारने वाला शांति और विश्वमैत्री का

देवदूत सबके उद्धार के लिए उद्यत हो गया है ।

अंध परम्पराओं, रूढ़ आस्थाओं और आधारहीन मूल्यों के जीर्ण-शीर्ण खंडहर को ध्वस्त कर नए आध्यात्मिक विश्व के सृजन के लिए अपने आप को समर्पित कर देने वाले शिल्पी की तरह मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज की भूमिका अपने आप में अनेक संभावनाओं को संजोये हुए अविरल गति से अग्रसर हो रही है । संसार के बुद्धिवादी दार्शनिक अथवा भौतिकवादी वैज्ञानिक इस परम सत्ता को स्वीकारें या छोड़ दें, यह निरपेक्ष रूप से एक दिन नए विश्व के निर्माण का स्वप्न साकार करेगी । हो सकता है, तर्क-वितर्क की बुद्धि अपने भीतर से इस अमृत सलिल को बह जाने दे किन्तु वह कहीं न कहीं इस रत्न गर्भा से समेह का निर्माण कर ही लेगा । यह भी हो सकता है कि तामसी वृत्तियों के विरुद्ध उसे बहुत बड़े संघर्ष का सामना करना पड़े और आसुरी शक्तियां उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए अपना समग्र अस्तित्व दाव पर लगा दें किन्तु इस अमृत बीज को भौतिक जगत् का कोई भी तत्व अस्तित्वहीन नहीं कर सकता । आशा और निराशा, सफलता और विफलता, उत्थान और पतन, शत्रुता और मित्रता, राग और द्वेष प्रत्येक द्वन्द्व को इस अजेय शक्ति के सम्मुख पराजित होना पड़ेगा । आने वाला विश्व जिस प्रकार के समग्र व्यक्तित्व का वरण करेगा उसमें इसका स्थान सर्वोपरि होगा । कौन जानता है इसकी मुट्ठी से कितने सूर्य एक साथ उगेंगे और विश्व मानस के भाग्य पर चिरकाल से छाया हुआ दुर्भाग्य का गहन कुहरा कितना जल्दी विलीन हो जाएगा ! पार्श्विकता एक दिन इसी अमरता के हाथों पराजित होगी । माननता के गौरवपूर्ण इतिहास का स्वर्णिम

पृष्ठ इसी नायक की यशोगाथा से भास्वर होगा । यही ग्रहपति धराधाम पर शाश्वत भूकम्प लायेगा । तब विश्व की कौन-सी ऐसी वाणी होगी जिससे इसकी स्वस्ति का स्वर मुखरित नहीं होगा ? पृथ्वी पर एक अभिनव अरुणोदय अवतरित होगा । दिशाओं के कंठ से एक नया गान निःसरित होगा—

इस अभिनव विधान का नायक इस अभिनव वसंत का अलिवर ज्योतिपुंज विभ्रांत जगत् का सबको आज जगाने आया उतरा स्वर्ग धरा पर ऐसे धुला तमस् चिरकालिक मन का परम सुशील तत्त्व की महिमा आओ हम सब मिलकर गायें ।

ऐसे महान् सन्त का जीवन चरित उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है । जिनके विषय में लिखा गया है :—



जन्म एवं शैशव

आज के हरियाणा प्रान्त के गुड़गांव जनपद में शिकोहपुर नाम का एक ऐसा ही ग्राम है जहां की प्राकृतिक सुषमा चारों ओर फैली हुई पहाड़ियों, हरे-भरे खेतों, भीलों, मनोहर वनों और नाना प्रकार के पशु पक्षियों में बिखरी पड़ी है। यहां के निवासी सरल हृदय भावुक और मिलनसार हैं। इस छोटे से गांव में जहाँ मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने प्राणों को न्यौछावर कर देने वाले वीर सैनिक देश के सजग प्रहरी शिक्षक और किसान मजदूर हैं वहीं विश्व को आध्यात्मिकता का शाश्वत संदेश देने वाले महात्मा भी। विभिन्न जातियों और धार्मिक मान्यताओं के लोग एक दूसरे से सुख-दुख में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। उनकी एकता, पारस्परिक प्रेम और एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना अनुकरणीय है। इसी गांव के लोग एक रात्रि के गहन अंधकार और सन्नाटे के वातावरण में सुख की नींद सो रहे थे कि सहसा आकाश में घनघोर घटायें धिर आईं। बादलों की गर्जना और बिजली की कौंध से प्रकृति में एक अद्भुत सम्मोहन व्याप्त था। क्षण-क्षण आकाश मण्डल में कौंध जाने वाली विद्युत रेखा रात्रि के गहन अंधकार में मानो किसी प्रकाशपुंज के पृथ्वी पर अवतरित होने की सूचना दे रही थी। सारा वातावरण मधुर संगीत से व्याप्त था। एक ब्राह्मण

दम्पति अपने शयनागार में निद्रानिमग्न थे। पत्नी स्वप्न-लोक के कुछ दिव्य-दृश्य देख रही थी। जब स्वप्न के दृश्य समाप्त हुए, पत्नी ने पति को सारा वृत्तांत सुनाया। सर्वप्रथम पति ने पति का चरणस्पर्श किया। तत्पश्चात् स्वप्न का वर्णन प्रारम्भ हुआ। इस वर्णन को सुनकर पति का हृदय उल्लास से नाच उठा। पति ने कहा—“निश्चय ही हमारे घर में किसी चमत्कारी आत्मा का प्रादुर्भाव होगा।” पत्नी यह सुनकर हर्षमिश्रित लज्जा से भाग खड़ी हुई। उसका मानस-मयूर प्रसन्नता से नाच रहा था। उसके मानस-पटल पर अनेकानेक रंग-बिरंगे दृश्य चल-चित्र की तरह घूम रहे थे।

वे पति-पत्नि थे पण्डित सुनहरा सिंह और श्रीमती भारती देवी। पण्डित सुनहरासिंह जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा योद्धा थे जिन्होंने विश्व के कई युद्धों में एक सैनिक के रूप में भाग लिया। परिवार की देख-रेख का सारा भार श्रीमती भारती देवी पर था जो न केवल नाम से भारती थीं, अपितु आचार और व्यवहार में भी भारतीय नारी की समुज्ज्वल उदाहरण थीं। प्राचीन भारतीय नारी की गरिमा के अनुसार आप उच्च धार्मिक संस्कारों वाली निर्भीक और सौ दुःख पाकर भी अतिथि से वारत आदर्श गृहणी थीं। आपकी शिक्षाओं, अनुशासन और सही मार्ग दर्शन का ही प्रतिफल था कि परिवार के सभी प्राणी अपने-अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए सन्मार्ग पर अग्रसर होने लगे। आप साहस और शौर्य की साक्षात् प्रतिमा थीं। एक बार की घटना है, एक ग्रामीण बालक को उसके परिवार वालों ने सताया। आपके मातृ-हृदय से भला यह कैसे सहन हो सकता था। आपने तत्काल उसका विरोध किया। बात यहाँ तक बढ़ी

कि वे लोग लड़ाई-भगड़े पर उतारू हो गये । उस समय घर में आपके सिवा अन्य कोई भी सदस्य उपस्थित नहीं था । स्वयं ही लाठी लेकर आप मैदान में उतर आई और बड़ी बहादुरी से उन्हें ललकारा । मुकाबले में प्रतिपक्षियों को मुंह की खानी पड़ी ।

धीरे-धीरे ६ मास व्यतीत हुए । १५ जून सन् १९२६ को जब एक ओर भारतवर्ष स्वातंत्र्य संग्राम में व्यस्त था और दूसरी ओर देश में साम्प्रदायिकता की आग भड़क रही थी, मनुष्य-मनुष्य के खून का प्यासा था, मां भारती की कोख से एक सुन्दर सुकान्त बालक का जन्म हुआ । चारों ओर आनन्द की लहरें छा गईं एक अद्भुत आह्लाद चारों ओर के परिवेश से परिलक्षित होने लगा । जो भी नवजात शिशु का दर्शन करता वह कृत कृत्य हो जाता । काल-क्रम से चन्द्रमा की कलाओं की तरह बाल शिशु बढ़ने लगा । जब नामकरण का समय आया तो नाम पड़ा सरदार सिंह । घर के सभी सदस्य उसे सरदार कहकर पुकारते । समय का विधान कहिये कि बाद में उसका नाम सही अर्थों में सार्थक हुआ और वह जनता का सरदार बना ।

एक दिन की बात है, बालक सरदार जब ६-७ वर्ष का ही था कि घूमता-घूमता गांव के बाहर निकल गया और खुले वातावरण में दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेत खलिहानों को देखता हुआ ठंडी-ठंडी समीर का आनन्द लेता हुआ प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने लगा । बालक क्या देखता है कि साथ ही के एक खलिहान में एक बूढ़ा व्यक्ति लाठी का सहारा ले कर झुका हुआ चल रहा है, जिसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई हैं, दन्तविहीन पोपला मुंह और शरीर अस्थिपंजर-सा प्रतीत हो

रहा है । वह कभी इधर और कभी उधर आ जा रहा है । बालक सरदार का संवेदनशील हृदय विचलित हो उठा । शीघ्र ही उसके पास जाकर उसने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, “बाबा यहाँ क्या कर रहे हो ? क्या यहाँ तुम्हारा कुछ खो गया है ?” बूढ़ा व्यक्ति जिसकी आंखें दया की याचना-सी करती हुई प्रतीत हो रही थीं, बोला, “नहीं बेटे ऐसी कोई बात नहीं । मैं तो यहाँ इस खेत की रखवाली कर रहा हूँ और जीवन में अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए आयु के शेष दिन व्यतीत कर रहा हूँ ।” बच्चे ने भोलेपने से पूछा, “बाबा कर्म के फल से तुम्हारा क्या मतलब ?” बूढ़ा व्यक्ति जिसने अपने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे, बच्चे के इस प्रश्न का क्या उत्तर देता । जिसने अभी तक अपने शैशव के ७ वर्ष भी पूरे नहीं किये थे । किन्तु बालक की जिज्ञासा ने बूढ़े को आश्चर्य में डाल दिया । उसने जैसे बालक सरदार की जिज्ञासा को टालते हुए कहा, “जाओ बेटे खेलो-कूदो और जीवन का आनन्द लो । समय आने पर स्वयं ही तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा !”

बालक सरदार का हृदय बूढ़े व्यक्ति की दशा देखकर करुणा से भर गया । वह बूढ़े के मन को और अधिक दुखाना नहीं चाहता था । इसलिये यह जिज्ञासा अपने मन में लिये हुये ही घर की ओर लौट पड़ा । रात्रि भर उसके मन में रह-रह कर बूढ़े व्यक्ति की शोचनीय दशा का विचार आता-जाता रहा । कभी उसके जर्जर शरीर का ढांचा उसकी आंखों के आगे घूमने लगता तो कभी विचारमग्न होकर यह सोचता कि बाबा ने कहा था कि यह सब कर्मों का फल है । समय आने पर स्वयं समझ जाओगे । आखिर यह कर्म क्या है ? मैं स्वयं इसे कैसे समझ जाऊँगा ?

शैशव का विकासक्रम ऐसे ही चल रहा था कि पण्डित बलवन्त सिंह जी कहीं जाने की तैयारी में जुटे हुए थे। बालक सरदार ने उनसे पूछा—आप कहां जा रहे हैं? पण्डित जी ने सीधा-सा उत्तर दिया, “बेटा मैं जगरांव जा रहा हूं।” बालक सरदार के कौतूहलपूर्ण मानस के लिये इतना-सा उत्तर पर्याप्त नहीं था। उसने पुनः प्रश्न किया, “जगरांव किस लिये जा रहे हैं?” पण्डित जी ने हंस कर कहा, “बेटा, वहां एक महान सन्त आये हुए हैं, मैं उन्हीं के दर्शन के लिये जा रहा हूं।” ‘सन्त’ शब्द बालक सरदार के लिये नया था। उसने इच्छा प्रकट की—मैं भी उनके दर्शन करने चलूंगा।” पण्डित जी ने बच्चे को बहलाना चाहा। उन्होंने कहा, “बेटा, तुम्हारी अवस्था अभी खेलने-कूदने की है। जब तुम बड़े हो जाओगे, तब उनके दर्शन करना। किन्तु सरदार इस बात के लिये तैयार नहीं था। उसने हठ पकड़ ली मैं उनके दर्शन करने अवश्य चलूंगा। उस समय बालक सरदार के मन में सहसा बूढ़े का दृश्य कौंध आया, जिसे कुछ ही दिनों पहले उसने खलिहान में देखा। उसके मन में विकल्प उठने लगे, शायद वह सन्त उन प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा जो अभी तक अनुत्तरित रह गये हैं। बालक के हठ के समक्ष पण्डित बलवन्त सिंह जी के सभी तर्क और युक्तियां पराजित हो गईं। बालक को साथ लेकर वे जगरांव को चले। दोनों जिस महान सन्त का दर्शन करने जा रहे थे वे कोई और नहीं, बल्कि पण्डित बलवन्त सिंह जी के संसारी रिश्ते के भाई पण्डित रत्न मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज थे, जो आगे चलकर मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज के दीक्षा गुरु बने।

गाड़ी गन्तव्य स्थल की ओर जा रही थी। खिड़की के बाहर

सारी दुनिया भागती हुई दिखाई दे रही थी। बाहर का सारा दृश्य चलायमान हो रहा था। बालक सरदार का मन भी अनेक प्रकार के प्रश्नों में उलझा हुआ था। तबसा उसने प्रश्न किया अपने फूफा जी से—“क्या आपके भाई को घर में कोई कष्ट था? किसी ने उन्हें मारा-पीटा था या किसी तरह का अभाव था, जिसके कारण वे घर छोड़ कर साधु हो गये?” छोटे से बालक के मुँह से ऐसे सारगर्भित प्रश्न को सुनकर पण्डित बलवन्त सिंह को जैसे अपने इस कुलरत्न पर गर्व हुआ। वे समझाने के स्वर में बोले, “बेटा, उन्हें घर में किसी प्रकार का न तो कोई कष्ट था और न ही कोई अभाव। सुख की सभी सुविधायें विद्यमान थीं किन्तु जन्म पूर्व के संस्कारों के कारण उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे साधु सन्तों की संगति में रहने लगे। जब भी कोई महापुरुष गांव में आता, वे उसका प्रवचन सुनने के लिये जाते। धीरे-धीरे ऐहिक वस्तुओं के प्रति उनके मन में विरक्ति उत्पन्न होने लगी। वे हर समय खोये-खोये से रहने लगे। ऐसे ही समय हमारे गांव में एक बहुत तेजस्वी सन्त आये। अन्य लोगों के साथ-साथ मेरे भाई भी गये और उस दिन से प्रति दिन नियमित रूप से उनका प्रवचन सुनने के लिये जाने लगे। उनके प्रवचन से छोटे लाल जी इतने प्रभावित हुये कि घर त्याग कर साधु बनने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की। वे नाम से तो छोटे थे किन्तु तपस्या, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ने बड़ा बना दिया। अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके महान पण्डित बने और फिर अज्ञान को दूर करने के लिये अनेक ग्रन्थों की रचना की। हजारों सांसारिक प्राणियों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

बालक सरदार पण्डित बलवन्त सिंह जी के उद्गारों को सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था । गाड़ी जगरांव पहुंची । जगरांव जैन धर्म के अनुयायियों का एक बहुत बड़ा तीर्थ बन गया है । यही वह जगरांव की पुण्यस्थली है, जहाँ जैन धर्म के सिद्ध सन्त प्रातः स्मरणीय मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज की समाधि है, जिस पर प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आते हैं और अपने मनोवांछित फल प्राप्त कर घर लौटते हैं । स्वर्गीय श्री रूपचन्द जी महाराज ने जगरांव में अपने दस चातुर्मास किये । गाड़ी से उतर कर पण्डित श्री बलवन्त सिंह जी और सरदार बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के श्रीचरणों में उपस्थित हुए । वहाँ पहुंचते ही उनको शोक समाचार मिला कि मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के गुरुदेव पूज्य श्री गोविन्दराम जी का स्वर्गवास हो गया है । श्री गोविन्दराम जी महाराज तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे । जो भी एक बार उनके सम्पर्क में आ जाता था, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं जाता था । ऐसे तेजस्वी सन्त के निधन से बालक सरदार के मन को भी आघात लगा । किन्तु उनके अवचेतन मन में यह धारणा व्याप्त थी कि मनुष्य का शरीर नश्वर है । इस संसार में जो जन्म लेता है उसे मृत्यु का भी वरण करना पड़ता है । आत्मा अमर है और शरीर नाशवान् । आत्मा शाश्वत है और शरीर अस्थायी । फिर भी मिथ्या वस्तु के लिये शोक क्यों किया जाय ? मुनिश्री गोविन्द राम जी महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एक शोक सभा हुई, जिसमें स्वर्गीय मुनिश्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते

हुए श्री छोटे लाल जी महाराज ने बताया कि गुरुदेव श्री गोबिन्द राम जी महाराज तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा थे, उनका सारा जीवन चमत्कारपूर्ण था जिसका स्वयं मैंने अनुभव किया है और उनके चमत्कारिक क्रिया-कलाप का मेरे व्यक्तिगत जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा ।

बालक सरदार नित्य प्रति नियमित रूप से मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की अमृतमय वाणी का श्रवण करने लगा । उसके बाल मन पर मुनिश्री जी की शिक्षाओं की गहरी छाप थी । वह बहुत-सा समय विचारमग्न और चिन्तातुर रहकर बिताने लगा । अन्त में उसने निर्णय कर लिया कि संसार में कोई अपना नहीं । आत्मा अकेले ही संसार में आया और अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोग कर अन्त में अकेले ही इस संसार से चला जाता है । न कोई इस संसार में हितु है न मित्र, क्यों न जो मानव-देह हमें मिली है उसका सदुपयोग कर बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास किया जाय । इस प्रकार की विचारधारा को अपने भीतर-भीतर सात दिन तक सरदार पालता रहा और अन्त में निर्णय का क्षण भी आ पहुँचा । पण्डित वलवन्त सिंह जी वापस जाने के लिये जब तैयार हुए तो बालक सरदार ने उनके साथ चलने की अनिच्छा प्रकट की । उसने कहा, आपको जाना हो तो जाइये और माता जी से मेरा प्रणाम निवेदित करने के पश्चात् यह भी बता दीजियेगा कि आपका वेटा अब ऐसे स्थान पर पहुँच चुका है जहाँ से लौटकर आना अब स्वयं उसके वश की भी बात नहीं रही है । माता जी का और मेरा बस इतना ही सम्बन्ध था । अब तो मैं महाराज श्री के चरणों में रहकर अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास

करूंगा ।” इतना कहकर बालक सरदार ने मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के बांब पकड़ लिये । पण्डित जी को इसकी आशा भी नहीं थी, छोटा-सा आठ वर्ष की आयु का बालक जिसके चेहरे से भोलापन रह-रह कर झलक रहा था, ऐसा निर्णय कर लेगा । पण्डित जी ने बहुत समझाया-बुझाया, अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये और साधु-जीवन की कठिनाइयों का भय भी दिखाया । पर बालक ने तो यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह अपने संकल्प से टस से मस नहीं होगा ।

मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज ने अपनी शरणा में पड़े बालक के भावी जीवन पर अपने तपोबल के माध्यम से दृष्टिपात किया तो उन्हें स्फुरणा हुई कि यह कोई साधारण बालक नहीं अपितु होनहार बालक है जो आगे चलकर महान पुरुष बनने वाला है । मुनिश्री ने पण्डित बलवन्त सिंह को इसके भविष्य के सम्बन्ध में बताया । अन्त में बालक सरदार के हठ के सामने पण्डित बलवन्त सिंह को हार माननी पड़ी और मुनिश्री की भविष्यवाणी को शिरोधार्य कर सरदार को मुनिश्री के चरणों में सौंप कर चल पड़े ।

तब सरदार की अवस्था केवल आठ वर्ष की थी । बालसुलभ चंचलता और खेलकूद में तमन्यता ने एक नया रूप लिया । गुरुदेव प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में सरदार को जगाते और बालक को जीव, अजीव, पाप, पुण्य आदि के सम्बन्ध में शिक्षा देते । बालक सरदार की प्रतिभा अद्भुत थी । गुरुदेव द्वारा सुनी हुई वाणी को वह शीघ्र ही हृदयंगम कर लेता । धीरे-धीरे उसने २५ बोल का थोकड़ा, ६ तत्त्व, २६ द्वार, प्रतिक्रम, तत्त्वार्थ सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, भक्तारस्तोत्र, साधु गुणमाला आदि अनेक ग्रन्थ कंठस्थ कर

लिये । गुरुदेव श्री के सान्निध्य में उसे व्यावहारिक शिक्षा भी मिलती रही । बालक सरदार बिना तर्क-वितर्क के गुरुदेव की एक भी बात को स्वीकार नहीं करता । गुरुदेव भी उसकी सभी शंकाओं का समाधान बहुत ही सरल और सूक्ष्म ढंग से करते थे । जैन साधु की समाचारी के अनुसार बालक सरदार गुरुदेव के साथ विचरण करते हुए पंजाब में रावी के तट पर स्थित एक नगर में पहुँचे, जहाँ एक अद्भुत घटना घटी । पत्तन नामक स्थान पर आप रात्रि में सोये हुए थे कि आपने एक स्वप्न देखा, जिसमें एक चमत्कारी महापुरुष आप से कहता है, “बच्चा उठो और अब शीघ्र ही साधु का जीवन धारण कर लो ।” इतना कहकर वह महापुरुष अन्तर्ध्यान हो जाता है । यह महापुरुष कोई और नहीं, अपितु महान तपस्वी और सिद्ध मुनि मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज थे । स्वप्न में ही बालक सरदार ने मुनिश्री रूपचन्द जी से आशीर्वाद माँगा । तभी से धर्म के प्रति उसके मन में श्रद्धा, विश्वास और समर्पण की जड़ें और अधिक गहराई में जमती गईं ।

फिर दीक्षा

अन्त में सन् १९४२ का वह वर्ष भी आ पहुँचा जब भारत में स्वतन्त्रता के लिये राजनैतिक उथल-पुथल मची हुई थी। जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स का मिशन असफल होकर वापस इंग्लैंड पहुँच गया। यह वह समय था जब जापानी भारतवर्ष के प्रवेश द्वार पर खड़े थे। गांधी जी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा सारे देश को दिया। अंग्रेज सरकार ने निहत्थे भारतीयों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये। जब एक महादेश एक अहिंसक सन्त के नेतृत्व में स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहा था, तभी जगरांव में घोषणा हुई कि २० अप्रैल १९४२ के शुभ दिन बालक सरदार का दीक्षा समारोह सम्पन्न होगा। चारों ओर खुशियों की लहर दौड़ गई। दूर-दूर स्थानों के अनेक साधु-साध्वी, नर-नारी, बालक और युवा जगरांव नगर में एकत्र होने लगे। सरदार की कार्हुती दीक्षा की तैयारियां घूम-धाम से होने लगीं। फिर वह शुभ घड़ी भी आ पहुँची जिसके लिये सबके मन में उत्सुकता प्राप्त थी। दीक्षास्थल पर विशाल जनसमूह पुष्पों की वर्षा, अनेक प्रकार के नाच-गान और कलाओं का प्रदर्शन हो रहा था। समारोह का प्रमुख आकर्षण था वैरागी सरदार, जिसके मुख-मण्डल की अलौकिकता को निहार कर उपस्थित जनसमूह प्रफुल्लित हो रहा था। तत्कालीन पंजाब श्रमण संघ के आचार्य

पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने दीक्षा का पाठ पढ़ाया और महान योगी स्थविरपदविभूषित श्री कुन्दन लाल जी महाराज के शुभ आशीर्वाद से पूज्य श्री छोटे लाल जी महाराज के निःश्राय में भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के पश्चात् वैरागी सरदार का नाम 'मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज' रखा गया। अपने दीक्षा के पावन प्रसंग पर बोलते हुए मुनि श्री ने कहा था, "आज मैं मन, वचन और काया से सावद्य कर्मों का परित्याग कर पंच महाव्रतधारी अनगार का पथ स्वीकार कर रहा हूँ। जिस पथ पर चलकर अनेकानेक आत्माओं ने परम पद को प्राप्त किया है। वह दिन मेरे लिये धन्य होगा जब मैं मन, वचन और काया से सम्पूर्ण मानव-जाति और ८४ लाख जीवों के कल्याण के लिये अपने आप को समर्पित कर दूंगा। मैं सच्चे हृदय से स्वीकार करता हूँ कि मानव-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि आत्म-दर्शन है। आत्मा के विशाल साम्राज्य और उसके विभ्राट् रूप के दर्शन के लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के महाव्रत को स्वीकार कर उसका सतत पालन ही मेरा ध्येय है। सर्वत्र मानव समाज में अज्ञान, अत्याचार और अभाव का जो कारुणिक दृश्य उपस्थित हो रहा है उसका निराकरण कर पारस्परिक बन्धुत्व, समभाव और मैत्री का विस्तार ही मेरा लक्ष्य है। मैं वीतराग प्रभु महावीर के पथ का अनुगामी हूँ। मैं आजीवन संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करूंगा।" उपस्थित जनता ने किशोर परिव्राजक की वाणी में सत्यता का दर्शन किया उसके हिमालय जैसे अटल संकल्प ने जनता को आशावान् बनाया। सब ने करतल ध्वनि से उसके उज्ज्वल भविष्य और संयम-जीवन की सफलता की मंगल कामना की।

मुनिश्री सुशील कुमार जी ने उस जीवन का वरण किया, जिसके लिए कहा गया है :

साधू जीवन कठिन है ऊँचा पेड़ खजूर ।

चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकना चूर ॥

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मुनिश्री सुशील कुमार जी को कल्पना का एक अद्भुत संसार मिला । तरुणाई के अनेकानेक सपने उनके मानस में मचल गए थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो विशाल मरु-भूमि में अमृत की भागीरथी बहा देने का अदम्य संकल्प लिए एक युवा संन्यासी चल पड़ा । अब मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज सधु-वर्ग में सम्मिलित हो गए । उनके आगमन से ऐसा लगा जैसे संत-समाज रूपी उपवन में अभिनव वसन्त का आगमन हो । तेजोमय आभा से दमकता हुआ मुख मण्डल, उन्नत ललाट, मुख पर श्वेत मुख-वस्त्रिका और कन्धे पर रजोहरण, शरीर पर धवल वस्त्र, यही था उनका साधु वेष ।

संस्कृत साहित्य की एक मार्मिक उक्ति है :

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते

निर्घर्षणच्छेदनतापताडनैः

तथा चतुर्भिः पुरुषं परीक्ष्यते

ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।

जिस प्रकार घर्षण, छेदना, ताप और ताड़न चार विधियों से स्वर्ण की परीक्षा होती है उसी प्रकार ज्ञान, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की परीक्षा होती है । मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने पूज्य गुरुदेव मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की शरण में आकर व्यक्ति सयाज और देश के लिए स्वर्ण के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया । अहिंसा का पालन करते हुए

ज्ञान, दर्शन और चरित्र के क्षेत्र में गहरे उतरते गये और मानसरोवर में डुबकी लगाकर मोती ढूँढ लाने वाले हंस की तरह उन्होंने सेवा, तप, त्याग और श्रद्धापूर्ण भक्ति लगन से अपने गुरुदेव पूज्यश्री छोटे लाल जी महाराज के ज्ञान रूपी सरोवर से न जाने कितने अनमोल मोती प्राप्त किए । अपनी जीवनदायिनी उपलब्धियों को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने आप तक ही सीमित न राख कर विश्व तथा मानवमात्र के कल्याण के लिए उनका विसर्जन किया, जिसके उद्धरण उनके जीवनक्रम के पगःपग पर मिलेंगे ।

और फिर विकास

विद्याध्ययन को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने समय जीवन के प्रथम चरण के रूप में स्वीकारा। यह वह समय था जब जर्मनी, इटली और जापान जैसी महाशक्तियों ने मिलकर पूरे विश्व को रौंदने के विचार से विध्वंस मचा रखा था। निरीह जनता का अस्तित्व खतरे में था। असहाय और साधनहीन लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। भारत अभावग्रस्तता के दौर से गुजर रहा था। ऐसी संक्रमण कालीन परिस्थिति में मुनिश्री सुशील कुमार जी पूरी निष्ठा और लगन से अपनी विद्या के अर्जन में लगे। हिटलर के अत्याचारों की कहानी ने मुनिश्री के मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। वे विचलित हो उठे। तभी गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सुशील अभी तुम शांत रहो और अपना अधिक से अधिक समय ज्ञानार्जन में लगाओ। जब पाप का घड़ा भर जाता है तो समय आने पर वह अपने आप फूटता है। गुरु-आज्ञा को स्वीकार कर पुनः मुनिश्री अपने अध्ययन में लीन हो गए।

धीरे-धीरे मुनिश्री सुशील कुमार जी में नेतृत्व की शक्ति विकसित होने लगी। वे यह अनुभव करने लगे थे कि युवा वर्ग ही महात्मा गांधी के स्वप्नों को सरकार कर सकता है। युवा पीढ़ी ही आत्म-बलिदान के मार्ग पर अग्रसर हो कर समाज और राष्ट्र का नेतृत्व कर सकती है। सदियों से दासता की शृंखला में जकड़ी हुई भारत मां का उद्धार केवल युवा ही कर सकते

हैं । तरुण संन्यासी का मानस युवावर्ग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की कल्पनाओं से आंदोलित हो रहा था । महात्मा गांधी के नेतृत्व में सारा देश स्वतन्त्रता संग्राम में व्यस्त था । स्वतन्त्रता की कुछ आशाएँ भी बंध गई थीं । मुनिश्री सुशील कुमार जी इस ताक में थे कि किस कोने से स्वतन्त्रता संग्राम में प्रवेश किया जाये । एक ओर अहिंसा और प्रेम का उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन और दूसरी ओर क्रन्दन करती हुई भारत माँ की कर्ण पुकार ! जब कभी उनके विकल्प के चयन का प्रश्न आजा, वे मन ही मन उदास हो जाते । जब कभी उन्हें सामान्य जनता के बीच अपने को व्यक्त करने का अवसर मिलता वे अहिंसक राज्य-क्रांति में सक्रिय भाग लेने के लिए युवकों को प्रेरित करते । स्वदेशी का प्रचार, स्वावलम्बन, श्रमदान, अभय आदि का उन्होंने उपदेश किया । इनकी प्रेरणा से युवकों के कई संगठन बने जिन्होंने अनाम रह कर भारत के स्वातन्त्र्य यज्ञ में अपनी आहुति दी । आप की वाणी में इतना ओज था कि आपके सम्पर्क में आने वाला कोई भी युवा उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका । आप ने जगह-जगह घूमकर स्वतन्त्रता की अलख जगाई और शिथिल तथा चेष्टाहीन शिराओं में जागरण एवं प्रयाण का मंत्र फूँका । साधु मर्यादा में रहते हुए लितना भी संभव हो सका आप ने अपना योगदान दिया ।

युवकों के बीच एक बार अपना विचार व्यक्त करते हुए आपने कहा, “यह महान् देश भारतवर्ष एक बार फिर सारे संसार के लिये ज्ञान, कौशल, मेधा तथा अमृत का प्रकाश-स्तम्भ बनकर आज के भौतिकवाद में भटकते विश्व को शांति और आध्यात्मिकता का सन्देश दे सकता है । आज जो निराशा और

बेचैनी युवा पीढ़ी में दृष्टिगोचर हो रसी है वह स्वतः ही समाप्त हो सकती है । पर इस कटु सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जहाँ एक ओर युवाःवर्ग अपने सही रास्ते से भटक गया है वहाँ दूसरी ओर अधिकांश शिक्षक वर्ग भी उस मापदण्ड पर उतना खरा नहीं उतरता जिसकी अपेक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को अपने शिक्षक से होती है । यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसी विकट परिस्थितियाँ फिर उठ आई हैं । जिस प्रकार कमल का फूल कीचड़ में रहकर भी अपने सौष्ठव और सुरभि से सबको आनित करता है और परिवेश के सौंदर्य में चार चाँद लगाता है उसी प्रकार मुनिश्री सुशील कुमार जी विषमय वातावरण में रहते हुए विश्व-जन के लिये सौख्य एवं सद्प्रेरणा के स्रोत बने रहे ।

स्वतन्त्रता संग्राम के क्षितिज पर एक नये ध्रुव का उदय हुआ । भारत माता के एक वीर सपूत श्री सुभाष चन्द्र बोस ने सिंगापुर में भारत की स्वतन्त्रता के लिये आजाद हिन्द फौल की स्थापना कर के वीरता के क्षेत्र में विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया । तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी ने उद्घोषणा की कि स्वतन्त्रता केवल शब्दों से नहीं बल्कि अदम्य साहस और शक्ति के बल पर ही प्राप्त की जा सकती है । विश्व में जिसने स्वतन्त्रता का मूल्य न चुकाया हो ऐसा कोई भी देश इतिहास के पृष्ठों में अंकित नहीं है । लगता है, अब वह समय दूर नहीं जब भारत माता की दासता की बेड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी । इसी प्रकार अपनी ओजमयी वाणी से जनता को उद्बोधन देते हुए मुनिश्री ने पंजाब में नवां शहर और मोगा में वर्षावास किया ।

वहाँ से अपना वर्षावास समाप्त कर जगरांव की धर्मप्रेमी

जनता की भाव-भरी विनती को स्वीकार कर आप पूज्य गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज के साथ जगरांब पधारे । उसी समय वहाँ महाराज श्री कुन्दन लाल जी पधारे हुए थे । पूज्य श्री कुन्दन लाल महाराज का आप पर अपार प्रेम था । मुनिश्री कुन्दन लाल महाराज के सान्निध्य में आपने नाना प्रकार की यौगिक साधनाओं का अभ्यास किया । आपके प्रेम, विनय, भक्ति और श्रद्धा से मुनिश्री कुन्दन लाल जी महाराज बहुत प्रभावित हुए ।

एक बार फिर मानवता पर घोर वज्रपात हुआ । जापान के दो नगरों नागासाकी और हिरोशिमा पर एटम बम बरसाया गया, जिसके फलस्वरूप भीषण नर संहार हुआ । इस दानवी कुकृत्य की भर्त्सना करते हुए मुनिश्री सुशील कुमार जी ने कहा कि हम किसी पर शक्ति के बल पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते । यदि सही अर्थों में हमें किसी पर विजय प्राप्त करनी है तो हमें उसके हृदय पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । ऐसी विजय युद्ध या संहारक अस्त्रों के सहारे नहीं अपितु प्रेम और पारस्परिक सहयोग की भावना का विस्तार करके ही प्राप्त की जा सकती है । यदि कोई व्यक्तिगत रूप से संसार पर अपनी एकछत्र प्रभु-सत्ता स्थापित करना चाहता है तो यह असम्भव है । वह चाहे कितना ही बलवान हो क्योंकि तलवार का यह दर्शन है कि उससे मजबूत तलवार एक दिन उसे काट देती है । जिस हिटलर ने विश्वविजय प्राप्त करने के संकल्प किए, विश्व-सम्राट् बनने के सपने देखे, उसका अस्तित्व इस प्रकार सयाप्त हुआ जैसे आकाश से कोई तारा चुपचाप टूट कर गिर गया हो । काश, उसने शक्ति के मद में चूर होकर गलन दिशा में कदम न बढ़ाये होते तो क्या आज के विश्व का वह महान् युगपुरुष न बन गया होता ? जो

जर्मनी आज तक दूसरों की सलाह मानने को विवश है क्या वह एक स्वतन्त्र और महान् राष्ट्र न होता ? इतने साधन, इतना ज्ञान-विज्ञान और इतनी सूक्ष्म-बुद्धि के होते हुए भी जर्मनी की यह दशा विधि की सदा से ही क्रूर बिडंबना रही है कि अहं की भावना ने सदा ही निरपराध लोगों को यातनाएं पहुंचाई हैं और विश्व की संस्कृति के विनाश का कारण बनी हैं । भारत का इतिहास तो ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है । क्या रावण कम विद्वान् था ? चारों वेदों का जानने वाला महान् पण्डित और सोने की लंका पर शासन करने वाला सम्राट भी अहम् की भावना से नष्ट-भ्रष्ट हो गया । कंस और दुर्योधन के उदाहरण भी ऐसे ही हैं । दूसरी ओर प्रेम और अहिंसा के अमर उदाहरण भी हैं जिसके सहारे राम, कृष्ण, गौतम भगवान् महावीर, गांधी, गुरु नानक और ईसा मसीह मानव जाति के चिरकाल तक पूज्य बन गए ।

जगरांव के पश्चात् आप ने अपना आगामी चातुर्मास पंजाब प्रांत में मण्डी अहमदगढ़ में स्वीकार किया । अपने इस हातुर्मास काल में आपने शिक्षा और कर्तृत्व के नए आयाम उद्घाटित किए । उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया । उन्होंने कहा कि जब तक पुरुष के समानान्तर स्त्रियों को भी शिक्षा, समाज और संस्कृति के निर्माण में सहयोगी नहीं बनाया जाता तब तक स्वस्थ समाज की रचना नहीं की जा सकती । अनादि काल से नारी पुरुष की दासता का शिकार रही है और इस दासता के दौरान अनेक प्रकार की कुरीतियों और बुराइयों की जकड़ में आ गई । परिणाम यह हुआ कि चारों ओर का वातावरण कुंठापूर्ण और घुटनभरा सिद्ध हुआ । नारी को इस दुर्देव के पंक से निकाल

कर उसे पुनः प्रतिष्ठित करना है । आपकी विचारधारा का यह की सामान्य जनता और अनुयायियों में बहुत स्वागत हुआ । परिणाम यह हुआ कि अनेक बालिकाओं, युवतियों और यहाँ तक कि प्रौढ़ाओं ने भी आप के निर्देशन में शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया । समय-समय पर महिलाओं की सभायें भी होने लगीं । इन में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श होने लगा ।

मंडी अहमदगढ़ के चातुर्मास काल की सबसे बड़ी उपलब्धि आपको एक गुरु-भाई की प्राप्ति है । एक ऐसा गुरु भाई जो लक्ष्मण की तरह अपनी सारी आकांक्षाओं और मनोकामनाओं का बलिदान कर के आपके पीछे लक्ष्मण की तरह चल पड़ा और तब से लेकर आज तक कोई २८ वर्ष बीत चुके हैं, प्रत्येक दुख-सुख में आपके साथ रहा । जिसने अपने सारे अस्तित्व को आपके ही अस्तित्व में विलीन कर दिया, जिसने पीड़ा को तो अपने लिये चुना और सुख आपके लिये मुहैया किया । ऐसे त्यागी, शंत, तपस्वी और गम्भीर संत श्री सुभाग मुनि जी महाराज को कौन नहीं जानता ? मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज का भी श्री सुभाग मुनि जी के प्रति अनन्य प्रेम है । भ्रातृ-प्रेम की परीक्षा का समय भी ठीक उसी प्रकार आया जिस प्रकार लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर हुआ था । सन् १९७० की घटना है । श्री सुभाग मुनि जी महाराज को दिल का दौरा पड़ा, आप बेहोश पड़े थे । जब श्री सुशील मुनि जी महाराज को यह पता लगा तो भागे-भागे आये और दिन के दो बजे स्वयं उन्हें अस्पताल ले गए । मुनिश्री सुशील कुमार जी के लिए यह बहुत ही वेदना और चिन्ता के क्षण थे । आपके दृढ़ संकल्प की

सराहना किन शब्दों में की जाए । ध्यान लगा कर बैठे रहे जब तक आपको यह प्रतीति न हो गई कि श्री सुभाग मुनि जी महाराज का बाल भी बंका न होगा । ध्यान से उठे और सुभाग मुनि जी के सिर पर हाथ रख कर बोले, “चिन्ता की कोई बात नहीं । तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे ।” फिर अनवरत रूप से जब तक मुनि जी अस्पताल में रहे, आपने प्राणपण से सेवा, शुश्रूषा की ।

सन् १९४५ में जब आकाश से युद्ध के काले बादल छंटने लगे थे, विश्व के राष्ट्रों ने आपस में मिल-बैठ कर भगड़ों को सुलभाने के लिये लीग आफ नेशन्स के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कर ली थी और विश्व-शांति की किरणें फटने लगी थीं, तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अहमदगढ़ मन्डी का अपना चातुर्मास काल समाप्त कर लुधियाना के लिये प्रस्थान किया । विश्व की दुर्दशा देख कर आपके मन में भारी उथल-पुथल मची हुई थी कि क्या आज हमारा कर्तव्य नहीं है कि भूले-भटके लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए खुले मंच पर आकर जनता का आह्वान करें । यह उस समय की बात है जब जैन समाज और जैन साधु-संत पुरानी लकीर के फकीर बने हुए, पुरानी परिपाटियों को पकड़े हुए थे और विज्ञान की अद्भुत चमत्कारी शक्तियों का शांतिपूर्ण उपयोग करने में भी पाप समझते थे । यहां एक छोटी-सी घटना का उल्लेख आवश्यक होगा । आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का पदवीदान महोत्सव मनाया जा रहा था । आचार्य श्री जी को चादर ओढ़ाये जाने के पावन समारोह में भाग लेने के लिये अनेक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाएँ उपस्थित थे । ऐसे भव्य और विशाल

समारोह में युवा हृदय मुनि श्री सुशील कुमार जी उठे और बोलने के लिये माइक्रोफोन की ओर बढ़े । फिर क्या था, चारों ओर के वातावरण में जैसे कोलाहाल का तूफान आ गया । क्या साधु, क्या जनता सब में खलबली मच गई । सब ने एक स्वर से मुनि जी के इस कार्य की आलोचना की और कहा कि साधु को यह शोभा नहीं देता कि वह विद्युत यंत्रों का उपयोग करे । परन्तु आपका तो मार्ग ही और था । न तो आप किसी संकुचित दृष्टिकोण से समझौता करने वाले थे और न ही झूठ आडंबरों की आड़ में काम करने वाले थे । आप के विचार आंतिकारी थे । एक ओर जब आप बोलने को तत्पर हुए तो दूसरी ओर आप से माइक तक छीनने का असफल प्रयास किया । आपने सिंह गर्जना करते हुए कहा- 'जैन धर्म कोई संकुचित विचारधारा वाला धर्म नहीं है । इसका हृदय बहुत विशाल है । पर दुःख तो इस बात का है कि आज इसी धर्म को कुछ रूढ़िवादी और पुरातन पंथी ढोंग तथा अन्ध विश्वास पर चलने वाले लोगों ने एक चार-दीवारी में बन्द कर सीमिति कर दिया है । जो धर्म मानव मात्र को एकता का संदेश देता है, जिसकी उत्पत्ति पाखंडों को मिटाने और भूली-भटकी जनता को सही मार्ग दिखाने के लिए हुई, क्या यही वह धर्म है जिसके ठेकेदार मात्र उसे कुछ लोगों की वपौती बनाकर रखना चाहते हैं ? आपने उपस्थित जनता, विशेष कर युवकों और बुद्धिजीवी वर्ग का आह्वान किया और कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि खुल कर हम बन्द कमरों से बाहर निकालें और खुले वातावरण में ठंडे दिमाग से विचार विमर्श कर निर्णय लें और विश्व को बतायें कि जैन धर्म क्या है, इसके सिद्धान्त क्या हैं । तभी हम भगवान महावीर द्वारा बताये

सही मार्ग पर चल सकेंगे । अन्यथा हमारे लिये कोई मार्ग नहीं है । प्यारे भाइयो, यह एक ऐसा धर्म है जिसे कोई भी स्वीकार कर सन्मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा लेकर अपने जीवन का कल्याण कर सकता है । सच कहा जाये तो यह वास्तविकता है कि संसार का कोई भी धर्म, किसी जाति विशेष का धर्म नहीं बनता । सब में अच्छाईयां हैं । धर्म में बुराईयां पैदा करने वाले वे लोग हैं जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये धर्म और धर्म के बीच दीवारें खड़ी कर देते हैं वरना आप ही बडाइए, संसार का कौन-सा ऐसा धर्म है जिसने हिंसा का पाठ पढ़ाया हो विद्वेष की भावना फैलाने की बात कही हो, असहायों की सेवा करने से रोका हो ।” इस ओजस्वी भाषण को सुनकर सभी दंग रह गए । जगह-जगह चर्चाएं हुई । गृहस्थ वर्ग में ही नहीं अपितु साधु-साध्वी वर्ग में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के मत प्रकट किए गए । जितने मुंह उतनी बातें । किसी ने कहा, भाषण बहुत क्रांतिकारी तथा सत्य पर आधारित है, तो किसी ने कहा कि ऐसी बातें साधु को मंच पर नहीं कहनी चाहिए । सन्तों में बहुतों ने तो इसका खुला विरोध किया । धीरे-धीरे अधिकांश मत आपके पक्ष में होते गए । बहुत से गृहस्थों ने आपको आदर दिया तथा भविष्य की आशा के रूप में देखा । अन्त में वही हुआ जिसकी आशा थी । जिस लाउड स्पीकर के प्रयोग को लेकर आपका इतना विरोध किया गया उसी का प्रयोग आए प्रत्येक साधु-साध्वी कर रहा है । आप ही पहले साधु थे जिसने अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की परवाह किए बिना लाउड स्पीकर का प्रयोग किया था । इसके बाद तो क्रमशः आपने अनेक क्रांतिकारी कदम उठाये । अहिंसा का विगुल एक बार फिर चारों दिशाओं में बज उठा और छोटे से लेकर बड़े-

बड़े राजपुरुष तक आपकी सेवा में आने लगे तथा आपसे मार्ग-दर्शन पाने की अभिलाषा प्रकट की, जिसका वर्णन आगे आने वाले अध्यायों में किया जाएगा ।

क्रांतिकारी की यह नियति होती है कि चाहे वह धर्म का मार्ग अपनाये अथवा राजनीति का समाज को अपना कार्यक्षेत्र बनाये अथवा परम्पराओं में सुधार का बीड़ा उठाये, उसे प्रत्येक कदम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । पग-पग पर मुसीबतें अपना मुंह वाये उसके सारे अस्तित्व को निगल जाने के लिये खड़ी रहती हैं । धार्मिक क्रांति का मार्ग क्रांति के प्रायः सभी मार्गों से दुर्लभ और कंटकाकीर्ण है । जब कभी मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज से उनके जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में चर्चा हुई तो उन्होंने सहज भाव से कहा कि मेरा एक ही मिशन है, खतरे लो और जिओ । सच कहा जाये तो उनके जीवन-पथ का निर्माण तरह-तरह के खतरों से ही हुआ है । वे प्रायः यह कहते हुये सुने जाते हैं—जिस दिन मेरे मार्ग की कठिनाइयां समाप्त हो जायेंगी उस दिन शायद अगली सांस लेनी कठिन हो जायेगी । इस संदर्भ में श्री अरविन्द की 'निमन्त्रण' कविता का यदि उदाहरण दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी :—

ऊँचे पर्वत शिखर और घनघोर गगन का गर्जन
मेरा मार्ग भरा है अगनित जलनिधि लोल लहर से
ऊँचे नीचे और कंटकों से निर्मित है काया जिसकी
वही आज गन्तव्य हमारा जहाँ खड़े आराध्य हमारे ॥

अपग विचारों की सही अभिव्यक्ति के लिये मुनिश्री कुमार जी ने लेख और कविता को अपना माध्यम बनाया । अनेक विद्यार्थी, प्राध्यापक और विद्वान् आपके सम्पर्क में आए । आपने

‘परीक्षा’ नामक पत्रिका भी निकाली, जिसमें विद्यार्थी वर्ग को सही मार्गदर्शन और मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों का यथार्थपरक विवरण होता था। अनेक प्रकार के विरोधी विचारों, आगेषों और विवादों को आप ने अपनी सूझ-बूझ से सुलझाया। आपकी प्रतिभा पर टिप्पणी करते हुए महान शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर हंसराज जी ने कहा था कि मुनिजी जैसे होनहार और मेधावी विद्यार्थी मैंने अपने जीवन में बहुत कम देखे हैं। दिन भर नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हुये भी आप परीक्षा में सम्मिलित होते तो अन्य विद्यार्थियों से सदा आगे रहते। प्रोफेसर हंसराज जी आश्चर्य में पड़ जाते कि न जाने मुनि जी में कौन-सी शक्ति है। एक दिन आप ने मुनि जी से पूछ ही लिया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया कि प्रोफेसर साहब, यह सब गुरु-कृपा का फल है। अन्यथा मैं किसी योग्य नहीं हूँ। एक कहावत है कि जब विश्व सोता रहता है तब क्रांतिकारी परिश्रम करने में रत होते हैं। पर कभी अभिमान नहीं करते। मानव-मात्र की भलाई की चिन्ता में सदैव लगे रहते हैं। क्या यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के सम्बन्ध में पूर्णतया चरितार्थ नहीं होती? आप ने उसी समय ‘प्रभाकर’ तथा ‘साहित्य रत्न’ की परीक्षाएँ सफतापूर्वक उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् आपने साधु जीवन की मर्यादाओं का सम्यकरूपेण पालन करते हुए चातुर्मास समाप्त होने पर लुधियाना से विहार कर दिया।

उस समय भारतवर्ष पर कहर के बादल मंडरा रहे थे। देश का विभाजन एक प्रकार से निश्चित-सा हो गया था। ऐसे समय में आप मोगा शहर में पधारें। सन् १९५४ का चातुर्मास वहीं हुआ। यह वह भयंकर समय था जब हिन्दू और मुसलमान

एक दूसरे के खून के प्यासे थे । जो कल के पड़ोसी थे वे आज आपस में शत्रु बन गये थे । लाखों लोगों का खून पानी की तरह बहाया गया । लाखों माताओं और बहनों के सुहाग मिटाये गये । एक आदमी ने दूसरे के खून से होली खेली । विश्वास नहीं होता कि मनुष्य इतना नीचे गिर जायेगा कि उसे अपनी मनुष्यता का ही भान न हो । वर्तमान पीढ़ी ने अपनी ही आंखों से इस दुःखांत दृश्य को देखा है । फकीरों, औलियों, ऋषियों और सन्तों की भूमि भारतवर्ष में इस दानवीय लीला का साक्षात्कार किया । इस कारुणिक दृश्य को देखकर मुनिश्री सुशील कुमार जी का हृदय पीड़ित रहा । आप के कानों में आवाज गूँजने लगी । यह सब धर्म की देन है । उस धर्म की, जिसे भूखे भेड़ियों ने मानवता के दुश्मन स्वार्थी मनुष्य ने झूठ छल और बेईमानी की चादर ओढ़ा दी है । कोई हिन्दुत्व के नाम पर लड़ रहा था तो कोई इस्लाम की आड़ लेकर मानवता का खून बहा है । कोई कैथोलिक बनकर जुल्म डालता है तो कोई प्रोटेस्टेंट बन कर विश्व पर छा जाना चाहता है । इसलिए अब उन दीवारों को तोड़ना होगा, जो धर्म के नाम पर मानव के बीच हिंसा और द्वेष पर खड़ी की गई हैं । धर्म का ध्येय सत्य, शिव और सुन्दर रहा है । इसमें पारस्परिक द्वेष या लड़ाई-झगड़े के लिए कोई स्थान नहीं । केवल प्यार, केवल समपर्ण, अपने से प्यार, दूसरों से प्यार, सब से प्यार, वह भी सच्चा प्यार जो लेता कुछ नहीं सब कुछ देता ही देता है । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाटिका में लिखा हुआ फूल जो बिना किसी भेदभाव के अपनी सुगंध सब पर लुटता है और सब को अनंदित तथा प्रफुल्लित करता है किन्तु बदले में कुछ नहीं चाहता । ठीक उसी प्रकार धर्म भी एक खिला हुआ फल है;

जो चहे जितना इसकी सुगंध से विभोर हो जाये । इस कोमल फूल की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है, फिर जितना चाहें हम उससे सुगंधि प्राप्त कर के अपने जीवन का कल्याण करें ।

आवाज अर्थपूर्ण थी । सचमुच जैसे कोई दैवी शक्ति आपके भीतर प्रकट हो गई हो । मुनि जी ने निर्णय किया, चाहे कुछ भी हो जाए, अब तो इन बेड़ियों को काटना ही होगा ।

उस समय मुनि जी जिस भवन में ठहरे हुए थे वह घनी बस्ती के कुछ ही दूरी पर स्थित था । अतः खतरे के कारण प्रेमी भक्त जनों ने आपसे प्रार्थना की कि समय बहुत खतरनाक है । चारों ओर साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण दुःखदायी घटनायें हो रही थीं । हो सकता है कि कोई विधर्मी आप पर भी आकर हमला कर दे । मुनि जी सुनकर हंसे और कहने लगे कि प्यारे भाइयो, हमारा लक्ष्य तो धर्म के मार्ग पर चलकर अपने कर्तव्य का पालन करना है । धर्म खतरों को बढ़ाता नहीं उल्टि कम करता है । यदि हम, जिन्हें धर्म का नायक कहा जाता है, भयभीत हो जायें तो उनका क्या होगा, जो धर्म को समझते तक नहीं ? दूसरी बात यह है कि भय को धर्म के विरुद्ध माना गया है । आपने भगवान् महावीर की वाणी का स्मरण करते हुए यह बताया कि जो कोई भी इस लोक या परलोक का भय करता है वह कभी सच्चे अर्थों में धर्म-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता । आपने भी भगवान् की वाणी का अनुसरण करते हुए उसी भाव में रहने का निश्चय करके साधु-जीवन की मर्यादा का पूर्णतया पालन किया । 'जहाँ प्यार होता है वहाँ मार्ग स्वयं ही बन जाता है' की उक्ति के अनुसार वहाँ पर भी एक घटित हुई, जिससे अवगत कराना अत्यावश्यक है । जब भारत साम्प्रदायिकता

के विषैले घातावरण में से गुजर रहा था और भारत सरकार ने स्थिति पर काबू पाने के लिये स्थान-स्थान पर सेना तैनात कर रखी थी; उन्हीं दिनों मुनि सुशील कुमार जी अपने गुरु भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ जा रहे थे कि रास्ते में एक सैनिक मिला। उसने मुनि जी को रोककर पूछा कि आपके कंधे पर क्या रखा है ? मुनि जी ने विनोद में कहा, “यह हमारी तोप है।” सैनिक चौकन्ना हो गया और आश्चर्य-भरे स्वर में बोला कि आपके पास तोप कहाँ से आई ? यह तो केवल सरकारी सैनिकों के पास ही हो सकती है। आप कौन हैं ? क्या करते हैं ? कहाँ से आए हैं, कहाँ जा रहे हैं ? यदि कई प्रश्न एक साथ ही पूछ डाले। उसकी जिज्ञासा को शांत करते हुए मुनि जी ने उसे विस्तार से समझाया कि भाई जिस प्रकार तुम सैनिक हो उसी प्रकार हम भी सैनिक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम लोग बाहर के शत्रुओं से रक्षा करते हो और हम लोग भीतर के शत्रुओं से। बोलो हम दोनों सैनिक हुए कि नहीं ? सैनिक जो अब तक कौतूहलवश भ्रम में पड़ा हुआ था, मुनि जी की बात सुनकर शांत हुआ और उनकी सादगी और मधुर व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि उसने जैन संतों के जीवन उद्देश्य तथा दिनचर्या के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। वह मुनि जी के व्यक्तित्व और स्पष्टवादिता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने वापस जाकर अपने शिविर में भी मुनिजी और उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में चर्चा की। फिर क्या था। सारे शिविर में मुनि जी के बारे में उत्सुकता बढ़ गई। सबने मिलकर मुनिजी को शिविर में ही आमन्त्रित करने का निश्चय किया और तदनुसार प्रार्थना की, प्रार्थना को स्वीकार

कर मुनि जी सहर्ष सैनिक शिविर में पधारे और वहाँ प्रवचन किया। उनके प्रवचन से सैनिक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मुनि जी से प्रतिदिन शिविर में पधारने का निवेदन किया। इस प्रकार लगातार कई दिनों तक आपके प्रेरणादायी प्रवचन सैनिक शिविर में हुए।

इसी शिविर के सामने बलोच रेजीमेंट की एक टुकड़ी का भी शिविर था। जब उस टुकड़ी में यह समाचार पहुँचा तो उसके वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मुनि जी से बातचीत करने आये। उसके हृदय पर मुनिजी की बातों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि खसकी आँखों में आंसू आ गए। इसी स्थिति में वह बोला कि महाराज ! यदि आप जैसे ही विचार राष्ट्र के राष्ट्राध्यक्षों के हृदय में होते तो कभी देश की विभाजन और विनाश की यह लीला दिखाई न देती। वह लौट गया। शिविर उठ गये। किन्तु मुनि जी के हृदय पर दुःख की पीड़ा की एक गहरी छाप छोड़ गये।

मोगा की ही एक घटना है कि एक सज्जन जो वकालत करते थे, बहुतही नास्तिक विचारों के थे। एक बार वे बीमार पड़ गए। बहुत दवा कराई किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। उनका भाई आकर मुनि जी से प्रार्थना करने लगा कि यदि वे चाहें तो उसके भाई का कल्याण कर सकते हैं। मुनिश्री जी ने कहा, “जाओ दवा करो, समयानुसार वह स्वयं ठीक हो जायेगा।” किन्तु मुनि जी की बातों से उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह बहुत अनुनय-विनय करने लगा। और यह भी बताया कि वकील साहब लम्बी बीमारी के कारण चिड़-चिड़े स्वभाव के हो गये हैं। पहले नास्तिक तो थे ही, अब जो भी उनके पास जाता है और उनकी

भलाई की कोई बात करता है तो वे उसे पत्थर मारते हैं। मुनि जी को यह वृत्तान्त सुनकर दया आ गई और आपने उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। जब वह वहां पहुंचे तो देखा कि वकील साहब लेटे हुए हैं। साथ ही एक मेज रखी है, जिस पर पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े पड़े हैं। मुनि जी ने पहले वकील साहब के दुःख और कष्ट के बारे में पूछा। फिर बोले—“भाई साहब, यह पत्थर आपने क्यों रखे हैं?” उसने उत्तर दिया, “जो मेरा कहना नहीं मानता मैं उसे पत्थर मारता हूँ। दण्ड देता हूँ। मैं धर्म-कर्म नहीं मानता, आप जाइए मैं ठीक नहीं हो सकता। लोग मुझे तंग करते हैं, गाली देते हैं। जब मुझे क्रोध आता है, पत्थर मार कर बदला लेता हूँ।” मुनि जी ने बड़े प्रेम से उसे समझाया, “एक काम करोगे।” वह बोला, “क्या।” मुनि जी ने बताया कि यदि कोई तुम्हारी भलाई करे तो तुम उसको अपना हितैषी समझोगे, तो उसने कहा कि हां। मुनि जी ने कहा, “जिस प्रकार तुम्हें यदि कोई गाली देता है तो तुम पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है और तुम गुस्से में आकर उससे बदला लेने की तत्पर हो जाते हो। ठीक उसी प्रकार यदि कोई तुम्हारे भले की बात करे तो तुम पर अच्छा असर होता है। देखो, हम तुम्हें एक मंत्र बताते हैं। इस मंत्र में बड़ी शक्ति है। यदि तुम इसका जप नित्य प्रति आस्था और विश्वासपूर्वक करोगे तो यह मंत्र भी तुम्हारी भलाई करेगा और तुम स्वस्थ हो जाओगे। उसने कहा कि मैं मंत्र आदि को तो मानता नहीं, पर यदि आप कहते हैं तो जप करूंगा।”

न जाने मुनि जी की बातों में शक्ति थी या नमोकार मंत्र का प्रभाव था कि वह वकील भीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा और

एक दिन जब मुनि जा बाजार से निकल रहे थे तो एक व्यक्ति आकर उनके चरणों में गिर गया। यह सज्जन कोई और नहीं, वही वकील साहब थे जो मुनि जी से कह रहे थे कि महाराज अब मैं स्वस्थ हो गया हूँ। यह आप की कृपा और आशीर्वाद तथा मंत्र की चमत्कारिक शक्ति का ही परिणाम है। अब वह नास्ति नहीं एक आस्तिक व्यक्ति था। जिसके मन में धर्म और संतों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम उत्पन्न हो चुका था।

लुधियाना

चातुर्मास पूर्ण होने पर आपने लुधियाना की ओर बिहार किया। अभी रायकोट ही पहुंचे थे कि आप रोगग्रस्त हो गए। अभी आप रोगग्रस्त ही थे कि एक हृदय विदारक संवाद आपके कानों में पड़ा। युग पुरुष अहिंसा और सत्य के सच्चे आराधक महात्मा गांधी को गोली मार कर हत्या कर दी गई है। एक ज्योति सहसा बुझ गई थी। मानवता अनाथ हो थी। एक सन्त वह था, जो अहिंसा की वेदी पर बलिदान हो चुका था और दूसरा सन्त मुनि सुशील कुमार, जिसने सन् १९४२ का जोश देखा। निहत्थे लोगों को साम्राज्यवादी महाशक्तियों से लोहा लेते देखा और फिर विश्व-युद्ध की भयंकर आग में झोंकी जाती मानवता को देखा। राष्ट्र का विभाजन और निरीह लोगों को मौत का शिकार होते देखा। और कर्णभेदी चीखों के बीच खून की बहती नदियां देखीं। चारों ओर अराकता, लूटमार। जिस प्रकार सम्राट अशोक ने कलिंग के युद्ध में विजय प्राप्त की और युद्ध क्षेत्र जाकर विजित क्षेत्र का जब अवलोकन किया तो उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। उस वीभत्स दृश्य में यदि कुछ दिखाई देता था तो केवल धूएं के बादल, विनाश का तांडव नृत्य, लाखों शव, हजारों अधमरे लोगों का क्रन्दन, चीख और पुकार से सम्राट का हृदय द्रवित हो उठा था। उसे अपने कृत्य पर ग्लानि होने लगी। तभी उसने निश्चय किया कि मुझे राज-

पाट नहीं चाहिए । यह मैं क्या कर बैठा हूँ । संसार से उसे विरक्ति हो गई और तत्काल उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया । वह जीवन भर के लिए सत्य पर चलने का दृढ़ संकल्प मन में कर के साधु हो गया । मुनि जी ने अशोक की तरह किसी क्रूरता-पूर्ण कार्य में भाग नहीं लिया था किन्तु वह हृदयविदारक दृश्य अवश्य देखा । उसी समय मुनिश्री ने संकल्प लिया कि मजहब, भाषा, प्रान्त और राष्ट्र के नाम पर जब तक हिंसा होती रहेगी, मैं चैन से बैठकर विश्व में शांति और अहिंसा की स्थापना के लिए भगीरथ प्रयत्न करूंगा । प्रेस और शैत्री का संदेश जन-जन तक पहुंचाऊंगा और प्रयास करूंगा कि मानव-समाज अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर सके । तब से आज तक मुनि जी अपने इसी संकल्प की पूर्ति में लगे हुए हैं ।

स्वस्थ होने पर आप लुधियाना पधारे । वहां पर आप के आगमन से एक बार फिर धूम मच गई । आपने भी अपने उद्देश्य की सफलता के लिए कोई कसर उठा न रखी । और एक पत्रिका “हिन्दी साहित्य” का संपादन-संचालन प्रारम्भ किया । और धार्मिक शिक्षा के द्वारा लोगों को अपने कर्तव्य का बोध कराने लगे । पहले की अपेक्षा आपके विचार अधिक गम्भीर, सक्रिय और प्रभावशाली थे । जनता में इस पत्रिका का बहुत स्वागत हुआ । युवा लेखन और कथन को भी प्रोत्साहन मिला । चातुर्मास समाप्त होने को ही था कि मंडी अहमदगढ़ से गुरुदेव पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का संदेश मिला कि चातुर्मास समाप्त होते ही मंडी अहमदगढ़ आ जाओ ।

लुधियाना का चातुर्मास समाप्त कर आप मंडी अहमदगढ़ पधारे । तबवहां विराजित मुनिश्री कुन्दन लाल जी महाराज ने कहा

कि हम तुम्हारे हृदय की भावनाओं को समझते हैं और यह भी जानते हैं कि तुम्हारे दिल में विश्व कल्याण की उत्कट अभिलाषा विद्यमान है। पर इसके लिए तुम्हें अपने को पूरी तरह तैयार करना होगा। अपने ज्ञान की वृद्धि करनी होगी। याद रखो, तुम्हें अनेक बाधाओं और विरोधी का सामना करना होगा। धर्म युद्ध लड़ने होंगे। जब तक तुम स्वयं मजबूत नहीं हो जाओगे, संभवतः तुम वह सललता प्राप्त नहीं कर सकते, जिसकी तुम कल्पना करते हो। सफल सेनापति वही होता है जो समय को पहचानता है। समय को देख कर वह जितने उत्साह से आगे बढ़ता है समय आने पर उतने ही उत्साह से पीछे हट जाता है वह वीर पुरुष इतिहास का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर फूलों की वर्षा करता है।

मुनिश्री कुन्दन लाल जी महाराज की वाणी सारगर्भित थी, जिसका मुनि जी पर तत्काल प्रभाव पड़ा। उसी समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि जब तक गुरुदेव स्वयं आज्ञा नहीं देते तब तक चाहे जितना समय लगे उनके सान्निध्य में ही रहेंगे। इस प्रकार प्रकार लगातार तीन वर्ष तक चरणों में रह कर आपने विभिन्न धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन किया और संसार के अलग-अलग धर्मों के प्रति ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ ही आपने वहीं पर रहते हुए प्रभाकर, साहित्यरत्न और विद्यारत्न सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किए।

पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का स्वास्थ्य उन दिनों सहसा गिरने लगा। मुनि जी ने अपने गुरु भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ दिन-रात करके उनकी बड़ी सेवा की। एक-एक घन्टे बारी-बारी से जागकर सेवा में लगे रहे। पर होनहार को कौन

टाल सकता हैं। एक दिन श्री संघ को बुलाकर मुनिश्री कुन्दल लाल जी महाराज ने कहा कि भाइयो, अब मैं इस संसार से विदा लेने वाला हूँ। यदि किसी को मेरे कारण कोई कष्ट या पीड़ा हुई हो तो उसे भूल जाएँ। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। उन्होंने मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज, मुनिश्री सुशील कुमार जी तथा श्री सुभाग जी के सिर पर हाथ रखा और शिक्षा दी कि अपने संयमी जीवन का पूर्ण ध्यान रखना और धार्मिक मर्यादाओं में रहते हुये अहिंसा और प्रेम का प्रचार करना तथा भगवान् महावीर की वाणी में श्रद्धा रखना और उसका प्रचार विश्व भर में करना। फिर आपने शांत भाव से भव की ओर देखा और कहा कि मुझे नमोकार मंत्र सुनाओ। सब ने महामंत्र नमोकार का पाठ आरम्भ कर दिया। सब के नेत्रों में अश्रु भर आए। इतने में एकाएक आकाश में बादल उमड़ पड़े और देखते-देखते ही बड़ी-बड़ी बूंदें रड़ने लगी। एक बूंद खिड़की में से आकर श्री कुन्दन लाल जी महाराज के सिर के मध्य में इस प्रकार पड़ी मानो वह महायोगी के संसर्ग से धन्य हो जाना चाहती हो। सहसा महाराज जी का मुख खुल गया और उनके प्राण पंखेरू उड़ घये। आत्मा स्वर्ग लोक सिधार गई और मृत्यु देह पड़ी रही। सारे नगर में बिजली की दौड़ की तरह यह दुखद समाचार फैल गया। मुनिश्री के पार्थिव शरीर का दर्शन करने के लिये और दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये अपार जन-समूह उमड़ पड़ा। श्री कुन्दन लाल जी महाराज का पार्थिव शरीर ऐसा लग रहा था जैसे वह विश्राम कर रहे हों। दूसरे दिन उनकी शवयात्रा आरम्भ हुई। एक बार फिर आकाश में बादल छा गए और मूसलाधार वर्षा होने लगी।

लगता था कि शवयात्रा में विघ्न पड़ेगा । सभी मुनिश्री सुशील कुमार जी के पूछने पर गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज ने फरमाया कि चिता की कोई बात नहीं । यह केवल पांच मिनट का खेल है । देवलोक में खुशियाँ मनाई जा रही हैं । ठीक पांच मिनट बाद वर्षा रुक गई और ठंडी हवाओं के चलने से वातावरण शांत हो गया । शवयात्रा के समाप्त होते ही शव को चंदन की चिता पर रखकर अग्नि को समर्पित कर दिया गया ।

अब गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सब लोगों को वहाँ से विहार कर देना चाहिये क्योंकि एक ही स्थान पर बिना किसी विशेष प्रयोजन के अधिक दिनों तक ठहरना शास्त्रीय नियम के विरुद्ध है । जनता के बहुत आग्रह करने पर भी गुरुदेव सहित मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज और श्री सुभाग मुनि जी महाराज ने प्रस्थान किया और जगराँव पहुँचे । सम्भवतः कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी लाला लाजपत राय के चाचा जी ने मुनि जी के दादा गुरु के पास आकर जैन धर्म के अनुसार दीक्षा लेकर साधु जीवन अंगीकार किया था । आज भी उनका परिवार मुनि जी को बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है ।

उस समय वहाँ पर श्री विमल मुनि जी महाराज भी विराजमान थे । जगराँव के श्री संघ ने प्रार्थना की कि मुनि जी का प्रवचन होना चाहिये । किन्तु आपने श्री कुन्दन लाल जी महाराज के स्वर्गवास के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार न की । आग्रह बढ़ता ही गया । अन्ततः आप को जनता की भावनाओं का आदर करना ही पड़ा । और आप नित्यप्रति धर्म सन्देश देने लगे । जगता आपके भाषणों को मंत्रमुग्ध होकर सुनती थी । इसी बीच

आप ने जीरा (पंजाब) की ओर बिहार कर दिया । वहां पर भी आपके भावनों की धूम मच गई । वहीं आपको तपस्वी श्री तारा चन्द जी महाराज के दर्शन करने का सुअवसर मिला । मुनिश्री ताराबन्ध जी महाराज बड़े ही सरल और हंसमुख प्रकृति के सन्त थे । जो भी आपके सान्निध्य में आता था, आपसे प्रभावित हुए बिना वहीं रहता था । उनकी प्रतिभा विलक्षण थी । उनको अमृतमयी वाणी के मानसरोवर में अवगाहन कर न जाने कितने ने हंसपति को प्राप्त किया ।

महत्वपूर्ण सम्मेलन

इसी बीच आपको सादड़ी साधु सम्मेलन में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला । साधु वर्ग ने मिलकर निर्णय किया कि एक ऐसा सम्मेलन आयोजित किया जाये जिसमें सभी साधु और साध्वियां एकत्र होकर बदलते युग की धारा के साथ अपने सिद्धांतों और विधि-विधान में परिवर्तन करें । इसके लिये निश्चित किया गया कि सब साधु और साध्वियां राजस्थान के सादड़ी नामक स्थान पर एकत्र हों । सम्मेलन बहुत महत्वपूर्ण था । ऐसे सम्मेलन में सम्मिलित होकर सक्रिय भाग लेना मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज जैसे प्रतिभाशाली सन्त के लिये आवश्यक था । आपने निर्णय किया कि वहाँ पर समाज के सुधार का प्रश्न हो, संरक्षण, संगठन और एकता पर विचार किया जाये । जनता और आयोजकों का भी अनुरोध था कि यदि आप सम्मेलन में सम्मिलित हों तो निश्चित रूप से समाज कल्याण में सहायता मिलेगी । अपनी योजनानुसार आपने सादड़ी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान कर दिया और एक लम्बी यात्रा पर चल पड़े । सम्मेलन का संस्मरण मुनि जी के अपने शब्दों में इस प्रकार है—

सचमुच आज से भारत के इतिहास में यह एक नया अध्याय जुड़ गया; जबकि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में बंटी हुई सारी स्थानकवासी साधु संस्था एक आचार्य के नियन्त्रण में संगठित हो

बई और समस्त इकाइयों और बिखरी हुई आचार्य परम्पराओं ने अपनी समस्त पुरातन पदवियां व उपाधियां त्याग कर एक सर्व-सम्मति नवीन विचार तैयार कर लिया । इस महान कार्य के सम्पादन के लिये भारत भर के सम्प्रदायों से प्रतिनिधि मांगे गये थे । जिनमें दो-चार को छोड़कर २२ सम्प्रदायों के प्रतिनिधि ५२ की संख्या में एकत्रित भी हुए थे । श्वे० स्था० जैन कान्फरेंस ने क्या-क्या प्रयत्न किये और दूसरे हिताकांक्षी वर्ग ने क्या-क्या कष्ट सहन कर इसे पूर्ण करने का भगीरथ प्रयास किया यह सब सम्मेलन की पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है । मैं तो आपको केवल सम्मेलन के कुछ अंदरूनी संस्मरण ही बताऊंगा । वास्तव में यही कुछ तो उसका जीवन है ।

साधु नियोजन समिति की विनती स्वीकार करके साधुवर्ग का प्रतिनिधि बन कर सादड़ी सम्मेलन की ओर चल पड़ा । इन पंक्तियों के लेखक को भी ७०० मील का मार्ग तय करना पड़ा । प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम उसी दिन ठीक ६ बजे सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्यवाही के समय पहुंच गये थे ।

जनता के कोलाहल में मांगलिक स्तवन और कीर्तन का उद्घोषण हुआ किन्तु सुना कुछ नहीं । अव्यवस्था के अभिशाप ने बदला ले ही लिया और १५ मिनट में कार्यवाही चलाकर सब उठ गये । पहली सभा समाप्त हुई । दोपहर के समय समस्त साधुवर्ग की सभा हुई और सम्मेलन के मुहूर्त की गरमा-गरम चर्चा हुई । किसी ने कहा कि मुहूर्त ठीक नहीं । जोधपुर से एक ज्योतिषी द्वारा प्रकाशित पैम्फलेट दिखाया गया जिसमें लिखा था कि सम्मेलन यदि इस मुहूर्त (रविवार, अक्षय तृतीया)

में किया गया तो अवश्य असफल होगा। किन्तु अन्त में धैरा यह समर्थन जोरदार स्वर में स्वीकार किया गया।

रविवार, अक्षय तृतीया (भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष बाद पारणा किया, इक्षु तृतीया भी इसे कहते हैं) चन्द्रमा वृष का, सूर्य मेष का, अधिक ग्रह उदय हैं। अतः आज का मुहूर्त मनाने में कोई आपत्ति नहीं, सिवाय इसके गुरु और शुक्र की युक्ति कहीं-कहीं संघर्ष का रूप दिखायें। किन्तु अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी ऐसा ज्योतिष दृष्टि कहती है।

तीन बजे का समय है, मंगल पाठ हो चुका है, अध्यक्ष का चुनाव करना है; नाम चुन दिये। धैरी और से अधिकारों की व्याख्या मांगी जा रही है, अन्त में 'बीटो' पावर का अधिकार देकर केवल दर्शक साधुओं की उपस्थिति स्वीकार कर ली जाती है। दलील यह थी कि जिस बाहु-वर्ग को इस विधानों का पालन करना है उन्हें क्यों न बैठने दिया जाये किन्तु वे बोल नहीं सकते, बोलने का अधिकार तो केवल प्रतिनिधियों को ही रहेगा।

ग्राम जनता में सम्मेलन क्यों नहीं कर लिया जाता? इस प्रश्न के उत्तर में, क्योंकि अभी इसकी कच्ची भूमिका है नहीं, जिसकी छाप समस्त दर्शकों पर पड़ सके, नहीं तो आदर्शवादी संस्था को धक्का लगेगा।

रात का समय है, विषय निर्वाचन समिति बनाई जा रही है। १५ नाम चुने गये, मेरा नाम भी चुना गया है और न जाने किस-किस का नाम चुना गया; किन्तु प्रातः की सभा के लिये समस्त प्रतिनिधियों ने ही विषय का निर्धारण किया। इस संघ का नाम भी तो अभी चुनना है; लीखिये नामों की परम्परा :

जैन संघ, महावीर श्रमण संघ, वर्धमान श्रमण संघ, भारतीय श्रमण संघ (मेरी ओर से चुना गया नाम)

अन्त में 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' सर्वा-
नुमति से स्वीकृत किया गया है ।

'स्थानकवासी' शब्द और 'भारतीय श्रमण संघ' नाम रखने वालों ने प्रबल युक्तियों की झड़ियाँ लगाईं । स्थानकवासी शब्द के पीछे हमारा सारा इतिहास है, समूची परम्परा है और अखिल भारतीय फेडरेशन है; तथा सर्वाधिक प्रसिद्धि का भी बल इसी नाम के पीछे है ।

भारतीय श्रमण संघ क्योंकि श्रमण संस्कृत का जन्म भारत में हुआ अतः भारत शब्द जोड़ा जाये । 'श्रमण' शब्द क्योंकि यह शास्त्रों में बार-बार आया है और 'श्रमण' शब्द से जैन साधुओं और बौद्ध साधुओं का ही बोध होता है । बौद्ध विदेशों में अधिक हैं, भारत में तो केवल जैन साधु ही श्रमण संस्था को कायम रखे हुए हैं । अतः भारतीय श्रमण संघ ही नाम उपयुक्त है । जिसके बल पर आप समूचे विश्व में पनप सकते हैं और श्रमण तथा गृहस्थ वर्ग के नाते दोनों ही मार्ग का संसार को उपदेश भी दे सकते हैं ।

श्रमण संस्कृति संसार की प्राचीन संस्कृति है, और वह आर्यों के भारत आगमन से पूर्व भी विद्यमान थी । साधकों की संस्था को ही श्रमण कहा गया किन्तु साधक की व्याख्या जैन शास्त्रों की उत्कृष्टतम देन है । अतः सर्वश्रेष्ठ श्रमण परम्परा यथार्थ और आदर्श के नाते जैन भिक्षु ही उसमें आते हैं । अतः इसका नाम 'श्रमण संघ' तथा भारत जोड़ कर 'भारतीय श्रमण संघ' ही ठीक रहेगा ।

प्रातःकाल का समय है, सोमवार का दिन है । एक आचार्य की योजना पर बहस हो रही है । उग्रदल बड़ी तेजी से आचार्य का समर्थन कर रहा है और पुरातन तथा पुराणजंभी जरा संकोच कर रहा है । आचार्य तो पहले भी भिन्न-भिन्न थे, गणधरों के भी पृथक-पृथक गण थे तो आज ही क्यों एक आचार्य की आवाज बुलन्द की जा रही है ? उग्रदल बहुत तीव्रता से एक आचार्य को कायम कर देना चाहता है ।

समाज को बचाना है, गौरव से जीना है, तो एक आचार्य की योजना के सिवाय और कोई चारा है ही नहीं । भिन्न-भिन्न आचार्यों ने समाज को अलग-अलग बांटा, संगठन को तोड़ा, अपनी-अपनी गुरूपरम्परा कायम की । इसके फलस्वरूप एक सम्प्रदाय का श्रावक व साधु दूसरी सम्प्रदाय के श्रावक और साधु को सम्यग्दृष्टि और बन्दनीय मनाने से भी इन्कार करने लग गया । एक ही विचार के लोगों में संघर्ष हुआ, लड़ाइयाँ छिड़ी और द्वेष की आग भभकी । यह सब एक आचार्य न होने के कारण ही हुआ । शिष्यों की अलग-अलग टोली ने कौटुम्बिक भावना को जन्म दिया । समाज के सामने वैयक्तिक दिषमता शासन करने लगी । जिसने आज लाखों की संख्या में अस्तित्व रखने वाली समाज छिन्न होकर छोटी टुकड़ियों में बंट गई । न संगठन रहा, न प्रेम रहा और न आपसी किसी प्रकार का भी समझौता कायम रह सका ।

बौद्धों की अपेक्षा हम में क्यों इतना भयंकर मतभेद और संस्थाओं का जन्म हुआ ? इसका कारण दीक्षा के समय संघ की उपेक्षा, भगवान की उपेक्षा और धर्म की उपेक्षा है । वैरागी को क्या बताया जाता है ? केवल गुरु । क्या पढ़ाया जाता

है ? केवल करेमि भंते ।' क्या सिखाया जाता है ? अपनी सम्प्रदाय । परिचय किससे कराया जाता है ? केवल अपने सम्प्रदाय के अनुयायियों से । फिर बताइये सामूहिक भावना किस प्रकार पैदा हो ? स्नेहधारा किस प्रकार प्रवाहित हो ? एक दूसरे से मिलकर सुसंगठित बनाने की भावना किस प्रकार पनपे ?

बस केवल एक ही उपाय है, एक आचार्य और एक संघ के शासन में नियन्त्रित होना ।

एक बड़े प्रतिष्ठित आचार्य जी उठे और छः माह परीक्षण नहीं, अपितु आपसी समस्थिति के लिये व्यवधान मांग कर बैठ गये ।

मैं :—ऐसा करने का कारण भी बताया जाय ?

उत्तर :—क्योंकि अभी मानसिक पृष्ठभूमि सन्तों की प्रबल नहीं देख रहा हूं ।

इतना सुनते ही मेरी आत्मा उग्रता से घ्वनित हुयी और मैंने कहना प्रारम्भ किया ।

“जिनके हाथ में सत्ता थी, वे भी सत्ता त्याग कर एकत्रित होकर कार्य करने लग पड़े । जो आप सन्तों की मानसिक स्थिति की निर्बलता की ओर संकेत कर कर रहे हो, इससे हृदय में हमें बहुत चोट लग रही है । मानसिक स्थिति को भांपने में बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक भी हार खा जाते हैं, आप कैसे जान पाये कि हमारी मनोभूमि निर्बल है ?

“संघ ऐक्य के लिए ७०० मील का पैदल सफर किया । चट्टानों, कंकड़ों, काटों और भयानक प्रचंडाग्नि से मुकाबला

किया केवल एकता के लिये ।

“आत्मिक और मानसिक सम्पूर्ण बल को संजो कर आज एकता का आह्वान किया और फिर आप कहते हैं मन अभी निर्बल है ।

“युग कहता है कि एक हो जाओ, समाज बड़ी उग्रता से चुनौती दे रहा है कि एक हो जाओ । आत्मग्लानि और दम तोड़ती मुनि व्यवस्था, भागती हुई इज्जत और शान्ति की लालसा लिये ताकती हुई दुनिया हमसे एक ही वस्तु मांगती है, वह है एकता ।

“हमारे अन्दर सड़ांध पैदा हो गई है । हमारा जीवन समाज के लिए भारभूत और अपने लिये अभिशाप रूप बन गया है !

“आप युवकों की ओर संकेत कर साम्प्रदायिक मोह को मत छिपाइये ! बड़प्पन के नाते कोई बात मान्य नहीं होगी, बुद्धिवाद को नीचे दबाकर रोका महन्तवाद नहीं चल सकता, आप हमारे जीवन से फायदा उठाइए, हमारी जिन्दगी को समाज, युग और विश्व के लिये आदर्श बनाइये । उन उठती हुई जवानियों से खिलवाड़ मत कीजिए, इनसे कुछ काम लीजिये ! एक अनुशासन कायम करिये और एक आचार्य बनाइये, बस यही एक ढंग है । नहीं तो इस ग्लानि में हम जीने और सांस लेने लिये तैयार नहीं ।”

वातावरण क्षुब्ध अवश्य हुआ किन्तु परीक्षण और व्यवधान दोनों ही शब्द हवा हो गए । कुछ क्षण के बाद सन्नाटे को चीरती हुई शान्तिरक्षक जी की ध्वनि उच्छ्वासित हुई कि एक आचार्य की योजना स्वीकार, बस कहते ही सर्वानुमति से पास

हो गई ।

सबके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, मीटिंग समाप्त हुई ।

समाचारी का प्रश्न बहुत टेढ़ा है, आज की सभा में लम्बा विवाद चल पड़ा है । समाचारी का तेल लगाकर पुराने और घिसे तीर भी प्रहार करने चल पड़े हैं । कभी प्रान्तीयता का अभिमान आड़े आता है, तो कभी शास्त्रों की दुहाई दी जा रही है । युवा मुनि वर्ग तो प्रतिनिधि होने पर भी आज दर्शक का पार्ट अदा कर रहा है । अपने को भी यह विवाद बहुत शुष्क लग रहा है ।

शय्यातर का प्रश्न छिड़ गया, और कुछ रुचि अंगड़ाई लेने लगी ।

आज्ञा किस की लेनी चाहिये ? मकान मालिक की । दूसरी ओर से आवाज आई, नहीं । मालिक और अधिकारी दोनों ही से आज्ञा ली जा सकती है । देखने वाली बात तो यह थी कि कुछ सन्त स्थानक की आज्ञा जैन बिरादरी के किसी भाई की लेते हैं और कुछ स्थानक के नौकर की भी आज्ञा लेते हैं और दोनों अपने आप को शास्त्र-सम्मत मानते हैं, और हैं भी दोनों अनुकूल ही । परन्तु दोनों का दृष्टिकोण थोड़ा चक्करदार है । मालिक और नौकर की परिभाषा अलग-अलग है, अपनी-अपनी परिभाषा ही उन्हें मान्य है ।

भगवान् महावीर भी उद्यान में माली की आज्ञा लेकर ही ठहरते थे तो हमें क्या है, नौकर की आज्ञा लेकर ठहरने में ? उत्तर मिलता है कि माली बाग की तोड़-फोड़ में भी शामिल है, सामान्य नौकर नहीं । खैर, लम्बे वाद-विवाद के बाद स्वामी

और अधिकारी की आज्ञा में ठहरने का प्रस्ताव पास हो गया ।

विवाद का भाग अभी छूट गया है, प्रतिनिधि कैसे सहन कर सकते थे कि स्वामी कौन ? इसका अधूरा निर्णय कैसे छोड़ दिया जाये ?

उत्तर दिया गया कि जिसका उस मिल्कियत में हिस्सा हो ।

स्थानक की आज्ञा किससे लेनी चाहिये कितने ही स्थानों में स्थानक की रजिस्ट्री ओसवाल बिरादरी के नाम की हुई है, तो क्या आज्ञा ओसवाल से ही लेनी चाहिये, क्या अन्य जैन से नहीं लेनी चाहिये ?

उत्तर दिया गया कि स्थानकवासी जैन से ले लेनी चाहिए ।

प्रश्न उठा कि एक ग्राम में एक स्थानकवासी जैन है, और एक ही स्थानक है, शेष बस्ती-समूची ही यवनों की है, वहाँ क्या किया जाय ? ऐसे-ऐसे ग्रामों के नाम भी बताये गए ।

एक आदर्शवादी ने यथार्थ को झुठलाकर त्याग की सलाह दी किन्तु वह मान्य नहीं हुई । अन्त में जैन धर्म से प्रेम रखने वाले की आज्ञा प्रामाणिक मानी गई तभी छुटकारा हुआ । यह प्रश्न भी एक युवक मुनि ने ही उठाया था ।

समाचारी के प्रसंग में विद्युत का प्रसंग भी बहुत रोचक रूप से उपस्थित हुआ । इस प्रश्न को भी बड़े नाटकीय ढंग से उपस्थित किया गया और समर्थन भी बहुत विचित्र तरीके से ।

विद्युत के प्रश्न के बारे में सारी समाज में मतभेद है । लाऊडस्पीकर के कारण यह प्रश्न इतना पेचीदा बना है, क्योंकि मुनि लोग आध्यात्मिक जगत से उतर कर सामाजिक और प्रचार के रंगमंच पर अपना आसन जमा रहे हैं । स्थिति इसलिये गंभीर बन गई है कि एक ओर तो समाज हमें सामाजिक रूप में और

प्रचारक के रूप में देखना चाहती है और दूसरी ओर तो समाज हमें सामाजिक रूप में और प्रचारक के रूप में देखना चाहती है और दूसरी ओर आध्यात्मिक पूर्ण निवृत्ति प्रधान रखना चाहती है। कौसी विचित्र समस्या है। प्रचार चाहती है किन्तु प्रचार के साधन देने में शर्म मानती है। यह कैसे चल सकता है, बस क्या था, बहुत लम्बा विवाद चला, और एक प्रबल समर्थक प्रतिनिधि ने तो लाऊडस्पीकर का निषेध करना अनाधिकार चेष्टा करना है, यहां तक कह दिया। इससे खलबली मची किन्तु उसकी चातुरीपूर्ण उक्तियों ने उनके खम्बे हिला दिये।

“लाऊडस्पीकर श्रोताओं की जरूरत है, वक्ता की जरूरत नहीं। वक्ता की वक्तृत्वकला में जहां भाषा, भाव और स्वर आवश्यकीय तत्व हैं वहां लाऊडस्पीकर का समावेश नहीं। ध्वनिवर्धक का सम्बन्ध श्रोताओं से है, इसीलिये वह वक्ता के कारण नहीं लगाया जाता अपितु अधिक श्रोताओं के कारण लगाया जाता है। इसलिये इसके निषेध में हमें नहीं जाना चाहिये।

किन्तु चुपके से दूध पर मलाई कौन उतारने देता है, सचित्त और अचित्त का भगड़ा आ गिरा और लाऊडस्पीकर की समस्या कितनी ही सतह नीचे उतर कर दब गई।

एक कमेटी बन गई, ‘सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति’ उसका नाम रखा गया।

बहुत सारी वनस्पति कुछ शस्त्र परिणत होने पर और केला आदि छिलका उतरने पर कई साधु ग्रहण करते हैं, और कई नहीं। यह एक विवाद का विषय था, भगड़े में सब चलते हैं और सन्देह हास्पद का त्याग होना भी जरा मुश्किल है। आखिर

क्या किया जाये । कुछ तो होना ही चाहिए । अन्त में कमेटी पर निर्णय का भार रखकर इस सिरदर्द से छुटकारा लिया गया ।

सम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक नामों के मोह को छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे, किन्तु यह उक्ति श्रावकों पर अधिक चरितार्थ होती है । फिर भी उसका किसी न किसी श्रमण ने प्रतिनिधित्व करते हुये कहा कि कितना अच्छा हो कि हम अपने श्रमणसंघ को बड़े-बड़े आचार्य जिन पर आज भी सम्प्रदाय चल रहे हैं उनके नाम पर सुसंगति करें जिससे उन पूज्यों का भी सुयश बढ़ा सकें ।

बड़े महापुरुषों के किसी को भी झगड़ा नहीं, हाँ साम्प्रदायिक संगठनों से चिढ़ अवश्य है । क्योंकि ये ही तो एक मात्र हमारी फूट के कारण हैं ।

“नहीं साहब समस्त नाम हटा कर एक ही श्रमण संघ का नाम चलेगा और किसी का नहीं चल सकता ।”

“एकदम मोह त्याग करना जरा कठिन होता है, योगाभ्यास करने के लिये भी छः मास रिहर्सल करनी पड़ती है अतः मास की अवधि जरूर देनी चाहिये ।”

“आज हमारे ये कैसे मुर्दा खयालात हैं । माता-पिता, स्नेही सम्बन्धी को छोड़ते तो हम ने एक मिनट नहीं लगाई, अब साम्प्रदायों का मोह हमारे पीछे ठाठे मारेगा । क्या आज हम बीस-बीस वर्ष और पचास-पचास वर्ष की निरन्तर मोहत्याग साधना के बाद इतने माया मोही बन गये हैं कि हम साम्प्रदायों के मोह को भी छोड़ने में असमर्थ हैं ?

“मैं नहीं समझता कि अब आप छः माह में क्या जादू कर देंगे कि मोह बिल्कुल ही भाग जायेगा । मेरे विचार में ये तथ्य-

हीन तर्क हैं।”

हाऊस में एक ऐसे प्रतिनिधि थे जो सबसे बड़ा आग्रह रखते थे। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हें कोई पहचान नहीं सका, क्योंकि उनका आग्रह शब्दों में छिपा नहीं होता था। अपितु अभिप्रायसूचक व्यंग्यपूर्ण ध्वनि के गाम्भीर्य में रूप संवारे हुए था। जिस पर लगभग प्रतिनिधिगण कितनी ही बार मुग्ध हुए और हां मिलाते रहे।

वे उठे, अवधि की मांग को मीठी गर्जना के साथ ठुकरा दिया। और सर्वानुमति से साम्प्रदायिक नाम हटाने का प्रस्ताव पास हो गया। प्रान्तों के बंटवारे के विषय में भी एक जबदरस्त झड़प हुई, कोई कहता कि प्रान्त पांच बनाने चाहियें। उत्तर में कहा गया कि ऐसा कैसे हो जायेगा। उत्तरप्रदेश में विचरने वाला आदमी अपने आप को पंजाबी किस प्रकार कहलाएगा? जैन स्थानक पर उत्तरप्रदेश के स्थान पर पंजाब कैसे लिखा जाएगा?

प्रान्तों के निर्माण में आधार भी तो होना चाहिये, या कि बिना आधार के ही प्रान्त बन जाएंगे। अगर सरकार के बनाए प्रान्त उसी रूप में स्वीकार कर लिये जायें तो क्या हर्ज है?”

“सरकारी प्रान्त तो बहुत हैं।

“तो क्या हर्ज है, प्रचार की भूमिका बढ़नी चाहिए, समस्त प्रान्तों में प्रचार करने के लिये हमें बढ़ना चाहिये।”

“क्या आप को पता है, सरकारी कितने प्रान्त हैं?”

‘तो आप ही बताइए, हमें तो पता नहीं कौन-कौन से सरकारी प्रान्त हैं? उग्रदलीय प्रतिनिधि उठे, कहने लगे, “बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि विश्व-भर का भूगोल बनाने वाले

भगवान के शासन के पट्टधर प्राचार्यों को आज भारत के प्रान्तों का भी पता नहीं मैं यह भी निवेदन कर दूँ कि प्रान्तों का वर्गीकरण करने से पहले मुनि श्री की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिये ।”

प्रस्ताव अधिक लम्बा होने के कारण अरुचिकर-सा बन गया और सरकारी प्रान्त लगभग १६ स्वीकार कर लिये गये ।

प्रान्त प्रश्न इतनी उलझन लेकर आया कि आते ही झमेला खड़ा कर दिया और जाते-जाते कितनी ही उलझन-भरी कड़ियां छोड़ गया । प्रश्न उठा कि प्रान्तों का धर्म-कार्य चलाने के लिये क्या प्रबन्ध करना होगा । क्या प्रान्ताचार्य बनाने हैं, या प्रवर्तक बनाने हैं या अन्य अधिकारी नियुक्ति करने हैं जो प्रान्तीय मुनियों की सुव्यवस्था कर सकें ।

इस एक प्रश्न के साथ लम्बी समस्याएं उलझी हुई हैं । प्रान्तीय भावना भी कहीं सिर न ऊंचा उठाए और साम्प्रदायिक दलबन्धियां भी कायम न रह सकें । कभी ऐसा भी न हो कि प्रवर्तक या प्रान्ताचार्य चुनते समय बड़ी सम्प्रदायें छोटी सम्प्रदायों को हड़पकर मजबूत पंजा जमा लें । गरमा-गरम बहस के बाद मंत्रि मण्डल की योजना स्वीकार की गई और १६ मन्त्री बनाए गये तथा १६ का कार्य चुनने का भार मुझे सौंपा गया; मानने का अधिकार हाउस ने अपने पास रखा ।

मेरे जो १६ विभाग थे । वे विश्व-भर को आगे रख कर बनाये गए थे, क्योंकि मेरे विचार में विदेशों में भी धर्म-प्रचार और भारत का सांस्कृतिक परिचय देने के लिये मुनियों का विदेश-गमन भी समाविष्ट था । आज किसी नाम के प्रचार की जरूरत नहीं, अन्धश्रद्धा अभिशाप है, संकीर्णता, दलबन्दी और

साम्प्रदायिकता मनुष्यमात्र के लिये कलंक है। आज की आवश्यकता केवल एक है, कोटि-कोटि अभिवन्दनीय श्रमण भगवान् महावीर के शब्दों में “माणुसत्तं परम दुल्लहं” अर्थात् मानवता ही परम दुर्लभ है। उसी की विश्व को आवश्यकता है, और उसी के प्रचार की जिम्मेदारी श्रमण संस्था पर है।

किन्तु अभी श्रमण-संघ पर रूढ़िग्रस्त तत्वों का गलबा है। अतः उभरने में कुछ वर्ष और लगेंगे। १६ विभाग स्वीकार नहीं किये, केवल आठ ही माने और एक विभाग पर एक से अधिक मन्त्री नियुक्त कर दिये गये।

अभी एक विवादग्रस्त प्रश्न तो रह ही गया था, उसने भी सिर उठाया, तिथि-सम्बन्धी वाद-विवाद निपटाया जाये’ इस नाम से प्रगट हुआ।

पक्खी चातुर्मासी और संवत्सरी के सम्बन्ध में बहुत गड़बड़ है। इस घोटाले को भी समाप्त कर देना चाहिये।

एक प्रतिनिधि ने अजमेर सम्मेलन का सहारा लिया और एक दूसरे ने गड़े मुर्दे उखाड़ने वाली लोकोक्ति ही चरितार्थ कर दी।

खूब गरमा-गरम बहस चली, पक्खी-संवत्सरी के नाम पर जोरदार रस्साकशी शुरू हो गई।

संवत्सरी कब करनी चाहिये? जब चातुर्मास में लोंद का मास आ पड़ता है तब क्या करना चाहिये। शास्त्र में तो केवल ४६ वें दिन चातुर्मास के ७० दिन शेष रहते संवत्सरी माननी चाहिये, ऐसा ही उल्लेख है। उसमें लोंद का कोई जिक्र नहीं?

दूसरी ओर से आवाज आई कि दो सावन हों तो पिछले में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी करने की

हमारी मान्यता है।

तीसरी ध्वनि भी गूँजी, “नहीं हमारे आचार्य ने संवत्सरी के विषय में सम्मेलन करने तथा निर्णय मानने में अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित रखी है।”

उनकी मान्यता है कि दो सावन हों तो भी भादों में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी मनाने की हमारी धारणा है।

एक और हुंकार उठी, “क्या शास्त्रों की दुहाई देने वालों के लिये यह एक चुनौती का प्रश्न नहीं है?” बड़ा कोलाहल मचा, अकस्मात् एक प्रतिनिधि ने मध्यम मार्ग का सुझाव दिया। पास के दूसरे प्रतिनिधि ने “मध्यम मार्ग से समझौता करना कायरता से समझौता करना है” कह कर मध्यम मार्ग के सुझाव को रद्द कर दिया।

विवाद गहरा रंग धारण कर गया और रात की सभा में निर्णय करने का निश्चय कर सभा विसर्जित हो गई।

इधर-उधर मुनिनों को संवत्सरी के विषय में एक मत करने के लिए बड़ी भगदड़ मची। रात की मीटिंग में यह प्रस्ताव फिर आ धमका।

अन्त में समस्त प्रतिनिधिमण्डल ने एक मुनि के याचना करने पर अपनी सारी धारणाएँ अर्पण कर दीं। यदि दो सावन हों तो भी और दो भादों हो तो भी केवल पिछले ही भादों में संवत्सरी करने की मान्यता स्वीकृत कर ली। तब जाकर इस विवाद का अन्त हुआ।

तिथियों के निर्णय में फिर भगड़ा था। कोई उदय से तो कोई अस्तसे तिथियों को मानता है। क्या निर्णय किया जाय? इसी

लिए किसी की चतुर्थी और किसी की उसी दिन पंचमी तिथि आ जाती है। इन आन्तरिक कलहों और मतभेदों ने इस समाज को एक नहीं होने दिया है।

अजमेर का निर्णय भी बहुत लचर है। एक तिथि निर्णायक कमेटी बनाई गई थी। किन्तु उसका निर्णय आज तक भी प्रकाश में नहीं आया। हां, उसका एक निर्णय जिसमें उसने कान्फरेन्स को पक्खीपत्र प्रकाशित और प्रमाणित करने का अधिकार दिया था, उसपर आज भी आचरण किया जा रहा है। सब तो स्वीकार नहीं करते किन्तु फिर भी अधिकतर सम्प्रदायों कान्फरेन्स की टीप को ही प्रमाणित मान कर चलती हैं।

किन्तु कान्सरेंस के पक्खीपत्रों में भी बहुत गड़बड़ी देखने में आती है, तब क्या करना चाहिए ? यही समस्या है और अनिर्णय की स्थिति भी उसी तरह मुंह बाये खड़ी है।

हाउस में कुछ देर तो सन्नाटा छाया रहा। आखिर एक कमेटी बनाकर उसके निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए, इतना ही निर्णय हुआ। देखें अब कब निर्णय होता है।

दीक्षार्थी का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था, जिस पर चर्चा उग्ररूप धारण कर गई। उग्ररूप का अर्थ क्रोध नहीं, अपितु एक ओर एक पक्ष का अनुमोदन और समर्थन था तथा दूसरी ओर दूसरे पक्ष का समर्थन और अनुमोदन था।

एक ओर से कहा जाता था कि योग्यता देखकर दीक्षा देनी चाहिए, दूसरी ओर से आयु का भी विशेष अनुरोध किया जा रहा था कि अमुक आयु के उपरान्त ही बालिग दीक्षार्थी दीक्षा ले सकेगा।

युवक मुनिगण की ओर से बालदीक्षा का गहरा विरोध था

जो कि इन पंक्तियों के लेखक के माध्यम से स्फोट हो रहा था । अन्त में दीक्षार्थी को दीक्षा देने का अधिकार मन्त्री व आचार्य को ही देकर इस प्रश्न से विराम ग्रहण किया गया ।

मैं अधिक लम्बा जाना नहीं चाहता । सम्मेलन के संस्मरण बहुत बढ़ जाएंगे । मैं उन्हें विभाग और वर्गरूप में बांट कर जल्दी से जल्दी छुट्टी लूंगा ।

सम्मेलन के संस्मरण पाँच भागों में बाँटे जा सकते हैं ।

१. धार्मिक, २. बौद्धिक, ३. सामाजिक, ४. साम्प्रदायिक, ५. ऐक्यविषयक

१. धार्मिक संस्मरण नियम, उपनियम, समाचारी तथा विधान के रूप में उपस्थित किये गए जिनका सम्बन्ध अधिकतर साम्प्रदायिक धाराओं से है और मैं अधिकतर उनका उल्लेख भी कर आया हूँ ।

२. बौद्धिक संस्मरण अधिक संख्या में तो नहीं है, फिर भी रूढ़िवाद पर बुद्धिवाद की विजय कहीं-कहीं अवश्य हुई है ।

वास्तव में सम्मेलन की सफलता बुद्धिवाद की विजय भी कही जा सकती है क्योंकि बुद्धिवादियों ने स्वार्थ को आगे न रख कर संघहित को ही प्रधानता देने में कल्याण समझा है ।

मंत्रिमण्डल और समूची शासन-व्यवस्था बुद्धिवाद के सिद्धांतों से ही अनुस्यूत है, यद्यपि इसे रंग कुछ भी बढ़ाना पड़ा हो । यह भी तो बुद्धिवाद की अनुपम जीत है कि शास्त्रीय पद्धति को युग के अनुकूल बना दिया जाय ।

रूढ़िग्रस्त तत्व इसे नहीं पहचान पाया और खुशी के साथ रूढ़ि का भावुकता तथा भौतिकता का रूप नहीं ले सकती ।

३. सामाजिक संस्मरण के रूप में हम कितने ही महत्वपूर्ण

विचार रख सकेंगे क्योंकि जो कुछ हुआ वह व्यक्ति की अपनी निजी इच्छा के कारण नहीं अपितु समष्टि की मांग की पूर्ति के रूप में, निजी महत्वाकांक्षाएं बलि के रूप में चढ़ानी पड़ीं ।

समाज ऐक्य के बिना बलवान् नहीं बन सकता । उसका आदर्श है केवल मुनिगण, यदि वह एक बने तो समाज भी एक बन सकता है । आखिर समाज भी तो मुनियों के नामों पर ही बिखरा हुआ है । मुनियों की अनेकता के मिटते ही समाज की अनेकता स्वयं लुप्त हो जायेगी ।

यही कुछ समझ कर एक आचार्य स्वीकार की गई ।

महावीर भवन, साम्प्रदायिक उपाश्रय और वैयक्तिक नाम पर चलने वाली संस्थाएं ही समाज की बिखरी हुई असंगठित शक्तियां हैं ।

सम्मेलन ने इस विषय पर बड़ी सावधानी पूर्वक जोरदार काम किया है कि समस्त स्थानक (भले ही वे किसी भी नाम से पुकारे जाते हों) एकमात्र श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ की निश्चाय में आ जाने चाहिए, और उनका नाम जैनस्थानक ही होना चाहिए तभी जैन श्रमक संघीय मुनि उसमें ठहर सकेंगे, वरन् उसमें कोई नहीं ठहरेंगे । इसके लिए एक वर्ष की अवधि दी गई है । संवत्सरी आदि तिथि-निर्णय भी सामाजिक एकता के नाते किए गए हैं । साहित्य, शिक्षण, प्रचार, चातुर्भास ये सब समाज को उन्नत बनाने के लिए ही व्यवस्था बांधी गई है ।

कोई भी साहित्य साहित्य मन्त्री की आज्ञा बिना नहीं छपा सकेगा । नहीं तो ये पुस्तकें कभी कभी हथियार के रूप में बरती जाती थीं ।

शिक्षण के बिना मानस कभी पनप नहीं सकता । जितने ऊँचे दरचे का शिक्षण दिया जायगा उतना ही हमारा मानसिक धरा-स्वच्छ और ठोस तथा संस्कारयुक्त बन सकेगा ।

प्रचार-सम्बन्धी समस्त नियम-उपनियम भी समाज को आगे रख कर बनाये गए और बनाए जायेंगे ।

चातुर्मास का दृष्टिकोण भी यही है । तीन-तीन, चार-चार सौ घरों वाले ग्राम भी चातुर्मास के लिए तरसते हैं किन्तु मुनि नहीं पधारते हैं । उनकी भी सुनवाई की जायेगी ।

साम्प्रदायिक दृष्टि कोण से कुछ बातें अवश्य रह गई हैं । इस संघ का नाम समाचारी तथा अन्य कुछ और ऐसी बातें हैं जिनमें हमने अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है और आजकल संकीर्णता का ही पर्यायार्थिक शब्द साम्प्रदायिक स्वीकार कर लिया है ।

ऐक्य विषयक प्रस्ताव हमने भले ही पास नहीं किए हैं, वातावरण जरूर तैयार कर लिया है और हमारा कुछ उद्देश्य यह बन गया है कि जैनों के समस्त फिरकों को एक पथ पर लाया जाय । श्री पुण्यविजय जी का पुण्य मिलन, हाऊस में आना, स्वागत और स्नेह संवादों में प्रेम बढ़ाना, इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहा है ।

हमें अन्त में भारत और विश्व की एकता का संदेश देना है, मानवता का पाठ पढ़ाना है । हां, उससे पहले स्वयं को तो पढ़ना ही चाहिए क्योंकि कोरा आदर्शवादी उपदेश व्यवहार्य और ग्राह्य दोनों गुणों से शून्य रहता है । इसीलिए आज के संसार में उपदेश उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए हैं जितना कि इन्हें होना चाहिए था ।

इस श्रमण संघ ने स्वयं एकता का पाठ पढ़ा है और उसने दुनिया के लिए आदर्श बन कर एकता का मूक पाठ तो पढ़ा ही दिया है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

मैं संसार के उस वर्ग से सम्बन्ध रख रहा हूँ जिसकी आजीविका का भार समाज वहन करता है। इस अदान के अनन्तर प्रदान का दायित्व इस संस्था पर अधिक आ पड़ता है। इसने उसे पूर्ण किया या नहीं आज यह प्रश्न विचारणीय नहीं रहा, अपितु पिछली भूल भविष्य में न पनप सके, ऐसे सुधार का ही प्रश्न शेष रह जाता है।

इस प्रश्न के समाधानार्थ ही सम्मेलन में मैंने अधिक चाव से भाग लेने की आत्म-साधन की। शारीरिक कष्ट-परम्परा को ध्यान में रख कर सम्मेलन में पहुंचा और उसमें उचित भाग अदा किया।

मेरा एक काम था कि मैं युग के सन्देश को सुनाऊँ और बार-बार चेतावनी देता रहूँ कि भविष्य में अगर श्रमणवर्ग को जिन्दा रहना है तो वह आज से उत्तरदायित्वपूर्व बने। अनुत्तरदायी व्यक्ति को राष्ट्र में कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ करता।

श्रमण वर्ग के पास पेट की समस्या का कोई समाधान नहीं। यदि आप कटु सत्य सुनने की क्षमता धारण कर सकें तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं युग के यथार्थ दिग्दर्शन का चार्ट पेश कर सकूँ।

आज देश को कर्मवीर बनने की जितनी जरूरत थी उतनी ही अधिक श्रमण वर्ग ने देश को भीरु बनाने में सहयोग दिया। मैं इस तथ्य को भली भाँति जानता हूँ कि श्रमण संघ का अभ्युदय पुरुषार्थ की पराकोटि पर आश्रित था। किन्तु आज का

श्रमण भगवान् महावीर का श्रमण नहीं, वह तो शंकर के माया-वाद के प्रभाव में आया हुआ अद्वैतवादी श्रमण है ।

संसार की अनित्यता का स्वर्ग-नर्क का, और आरम्भ-समारम्भ का डरा हुआ धिनौना रूप आज के श्रमण संघ की ही देन है ।

आज की साधना स्वर्गीय सुखों की मीठी कल्पना के लिये की जा रही है । यह पलायनवाद का धार्मिक रूप राष्ट्र के लिये कितना घातक है, क्या आप इसकी कल्पना नहीं कर सकते ?

‘कम्मे सूरा’ और ‘धम्मे सूरा’ का सिद्धान्त कितने बुरे तरीके से श्रमण संघ ने बदनाम किया है । थोथे क्रिया-काण्ड पर बल दे-दे कर समाज और धर्म की अन्तरात्मा को कितना खोखला किया है ।

अधिक से अधिक नियमों के शिकंजों में आजादी के लौहवीर श्रमण को बांधकर मोक्ष की खुली भावना को क्या नहीं कुचला है ?

आइए, जरा सोचिए और मुझे बताइए कि श्रमण का उद्देश्य क्या था ? पूर्ण निवृत्ति प्रधान बनाने का वास्तविक लक्ष्य क्या रखा गया था ?

इसका यथार्थ शब्दों में आप उत्तर देंगे कि ‘मोक्ष’ अर्थात् शुभाशुभ से छुटकारा, बताइए सच्चे दिल से भगवान् की साक्षी से आज के श्रमण का क्या वास्तव में यही उद्देश्य है ? अगर है तो छोड़िए समाज, कुटुम्ब, शिष्य-भावना तथा साम्प्रदायवाद, अलग हो जाइए इन समस्त प्रवृत्तियों से ।

अगर आप समाज, कुटुम्ब, शिष्य-भावना तथा साम्प्रदायवाद, अलग हो जाइए इन समस्त प्रवृत्तियों से ।

अगर आप समाज कल्याण के हितांकांक्षी हैं तब भी बहुत अच्छी बात है लेकिन यह तो बताइए कि समाज कौन-सी निर्बलता को दूर करने की जिम्मेदारी आपने ली है ?

अगर आप आत्मकल्याण के साथ-साथ समाज कल्याण भी चाहते हैं तब भी मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, मैं तो इस भावना का भी आदर करता हूँ, किन्तु जरा आत्मा से गुछिए तो सही कि वे क्रोध, मान, माया लोभ, लोलुपता, प्रतिष्ठा की भूख और ऐन्द्रिय सुखाकांक्षा कितनी मिट गई है ?

किसी तरफ चलिए, किन्तु अपना एक उद्देश्य लेकर चलिए, निरुद्देश्य मत चक्कर काटिए । आत्म-साधन करना या समाज सेवा दोनों ही उपायेगी कार्य हैं किन्तु समाज पर भार बनकर समाज को खोखला बनाना तो उपयोगी नहीं कहा जा सकता ।

आप बताइये कि आप समाज पर भार हैं या नहीं ? अगर हैं तो भार धनना छोड़ दीजिये; अगर नहीं हैं तो दायित्वपूर्ण बनिये और भार कहने वालों को मुंहतोड़ उत्तर दीजिए । किन्तु वह उत्तर शब्दों में न होकर रचनात्मक कार्य होना चाहिये !

मेरे यही विचार थे जो कि मुझे पंजाब से उठा कर राजस्थान सम्मेलन में ले गये । मुझे इन विचारों को प्रगट करना था और मैंने इसके लिये दोहरा काम किया है । उधर साधु-समाज से उत्तर भी माँगता और इधर जन-समाज को भी अन्ध-श्रद्धा छोड़ने के लिये बाध्य कर रहा था । मैं इसमें सफल हुआ या नहीं ऐसा सोचना मेरे लिये आवश्यक नहीं । फिर भी आप अधिक आग्रह करेंगे तो मैं इतना उत्तर दूंगा कि एक बार हृदय में छठने वाली विचारधारा सैकड़ों विचारधाराओं से मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली अवश्य बन पाई है ।

सम्मेलन पर हुआ विशिष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप—

उत्क्रांति के सूत्रधार मुनिवरों के परिचय देने का तो मुझे लोभ संवरण करना ही होगा। इसमें कारण मैं नहीं बल्कि परिस्थिति है। हाँ, पहला वार्तालाप टीकाराम पालीवाल, मुख्य-मन्त्री राजस्थान से हुआ—

यह संवाद भी मैं एक-एक संस्मरण के रूप में रखूँ तो अधिक अच्छा रहेगा। सायंकाल के समय मैं गुरुकुल भवन के बरामदे में खड़ा एस० एस० जैन सभा पंजाब के आदरणीय अध्यक्ष श्री हरजस राय जी से बातचीत कर रहा था जो कि अपनी समाज के एक तपे-तपाये कर्मठ और सच्चे रूप में नेता हैं। यह एक स्तुति नहीं अपितु वास्तविकता का छोटा सा रूप है। उनके रचनात्मक कार्यों की लम्बी परम्परा स्तुति की दीवारों को लांघ चुकी है। हाँ, अभी बातचीत चल रही थी कि इतने में मुख्य मन्त्री और उपमन्त्री तथा अन्य प्रान्तीय उच्चाधिकारी दलबल के साथ मेरे निकट आ गये। मुझे उनका परिचय दिया गया और कुछ समय में ही हमारे शान्तिरक्षक, सम्मेलन के सूत्रधार, एकता के संदेशवाहक स्वामी श्री मदन लाल जी महाराज आ निकले। बस, फिर क्या था। प्रसन्नता की लहरों में परिचय के आदान-प्रदान का कार्य मैंने ही अपने ऊपर उठाया, उन्हें बताया कि ये हमारे आध्यात्मिकता प्रधान श्रमण संस्था के शान्तिरक्षक (अध्यक्ष) हैं और आप राजस्थान के मुख्यमन्त्री।

विश्वशान्ति कैसे? प्रधानमन्त्री के इस मूक प्रश्न का समाधान देते हुए भी मैंने कहा कि जब तक आत्मा और बुद्धि का समझौता नहीं हो जाता तब तक विश्व में शान्ति स्थापित

नहीं हो सकती ।

विश्व आज आत्मा को दबा कर बुद्धि से विश्व शान्ति का उपाय ढूँढ रहा है । किन्तु याद रखिये, तर्कप्रधान बुद्धि, भौतिक सम्पत्ति को तोल-तोल कर शान्ति का सांस नहीं ले सकती ।

आत्मा भी बुद्धि, मन और शरीर के आधार के बिना अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकती । आज का युद्ध आत्मा और बुद्धि में हो रहा है । धर्म और विकृति में तनाव है ।

याद रखिये, मनुष्य तीन प्रकार की भूख रखता है—पेट की, मन की, और आत्मा की । मुख्यमन्त्री जी ! यदि आप एक ही भूख शान्त करने का उपाय करोगे तो दो भूख फिर भी शेष रह जायेंगी और जब तक भूख है तब तक अशान्ति है और अशान्ति का उग्र रूप ही युद्ध है । पेट की भूख का उपाय कम्युनिज्म से सीखिये । मन की भूख ऊँचे साहित्य तथा विचार-धाराओं से मिटाइये और आत्मा की भूख अध्यात्मप्रधान निवृत्ति से मिटाइये । इसके लिये आवश्यक है कि भौतिक सम्पत्ति के समाजीकरण के साथ-साथ यम, नियम, महाव्रतों का भी आत्मीकरण करिये तभी जाकर शान्ति आ सकती है । रूस में एक क्रान्ति आई और पेट की समस्या का समाधान कर गई । अब दूसरी क्रान्ति आयेगी जिसमें कुचला हुआ मन और दबी हुई आत्मा के लिये भी अध्यात्म को खुला स्थान मिलेगा । तभी रूस में वास्तविक शान्ति आ सकेगी । यही तरीका समूचे विश्व के लिये है ।

आपको चाहिये कि जहां आप उग्र रूप से भौतिकता की दौड़ लगा रहे हों वहां जरा अध्यात्म का भी उपदेश दीजिये और उसके लिये भी प्रबन्ध करिये ।

हिन्दुस्तान टाइम्स, सर्चलाइट, लीडर तथा पी० टी० आई० के संवाददाताओं से हुआ वार्तालाप—

सम्मेलन के विषय में कुछ औपचारिक प्रश्नोत्तर हुए फिर उन्होंने भी प्रश्नों का तांता साथ ही लगाया—

जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

‘अहिंसा’ पर सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये चार अहिंसा के पूरक के रूप में महाव्रत के नाम से स्वीकार किये गये हैं। प्रेम, ईमानदारी, प्रामाणिकता तथा विश्वास इनके बिना अहिंसा पनप ही नहीं सकती। हिंसा से इनका नाश होता है और अहिंसा के पोषण। आप धर्म की क्या व्याख्या करते हैं ?

‘वस्तुसभावो धर्मो’ वस्तु की वास्तविक स्थिति का नाम धर्म है। विकृति अधर्म है और वास्तविक स्थिति ही धर्म है, स्वभाव धर्म है, समता धर्म है, किन्तु विषमता, किसी विध्वंस और निर्माण की विषमता अधर्म है।

आप मतानुयायी हैं या धर्मानुयायी ?

“वास्तव में धर्मानुयायी।”

मत से आप क्या अभिप्राय लेते हैं ?

“परिस्थितिजन्य विवशता को दूर करने की मति से सूझा हुआ ढंग।”

इसके सबूत में देखिये दुनिया भर के मत जो कि परिस्थिति की विवशता को दूर करने के लिये जन्मे थे किन्तु आज वे परिस्थितियाँ तो खिसक गईं। किन्तु वे मत खड़े रहे। इसीलिये उनकी उपयोगिता नहीं रही। केवल दुनिया के लिये सिरदर्द के सिवा मत और कुछ नहीं कर रहे।

यवनों के दुर्घष काल में सिख मत हिन्दुओं की रक्षापंक्ति

के रूप में खड़ा किया गया था। आज वह परिस्थिति तो नहीं रही किन्तु सिख संस्था है। फल यह निकला कि वह आज रक्षा के स्थान पर आक्रमणकारी पंक्ति में जा खड़ी हुई; स्वार्थियों ने उससे अपना स्वार्थ साधना शुरू कर दिया।

आर्य समाज भी सुधारों और संगठन के सन्देशवाहक स्वामी दयानन्द का मत था। किन्तु आज वह पृथक् ही इकाई के रूप में अपने स्वार्थों की रक्षा सोचने लगा।

मत परिस्थिति के साथ ही साथ विलीन हो जाने चाहियें, नहीं तो मत धर्म का चोला पहन कर जनता को अन्ध-श्रद्धा की खाई में गिरा देते हैं।

उपयोगितारहित मतपरम्पराओं को समाप्त करने के लिये आप क्या कर रहे हैं ?

“यही कि उनकी अनुपयोगिता दिखाना। अगर आप सच्ची मानवता पर विश्वास करते हैं तो हम भी आपको पूर्ण सहयोग देने के लिये तैयार हैं !”

“मैं अनुपयोगी मत पर ही प्रहार नहीं करता अपितु साहित्य पर भी करता हूँ। मैंने संसार-भर के साहित्य-मर्मज्ञों के काव्य-लक्षणों को भी चुनौती दी है। मैं तो यह कहता हूँ कि वस्तु और भावमय युग जब मस्तिष्क-प्रधान भाषा के माध्यम से स्फूर्त होता है तब उसे हम दर्शन का नाम देते हैं और जब यही युग हृदय की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तो उसका नाम काव्य या साहित्य होता है।”

संवाददाताओं ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की, मेरा भी प्रतिक्रमण का समय था। बस, अखबारों को पूर्ण सहयोग का वचन दे कर विदा ली।

‘ललकार’ के सम्पादक से सम्मेलन के विषय में बड़ी लम्बी बातचीत हुई। सम्मेलन का उद्देश्य और उसके आदर्श-सम्बन्धी बहुत रोचक प्रश्नोत्तर हुए। जिसमें मुख्य भविष्य सम्बन्धी ये प्रश्न थे—क्या सम्मेलन का कार्य स्थायी रह सकेगा ? “अवश्य, निश्चित।”

प्रमाण ?

क्योंकि युग और समाज इस कार्य को पूरा करने में कटिबद्ध हैं। “क्या साम्प्रदायिक घेरे अभी तोड़ नहीं देने चाहिये ?”

प्रतीक्षा कीजिये और आत्मा के अन्तर्नाद में अपना उत्तर टटोलिये। लोकाशाह के सम्पादक ने तो समूचा वार्तालाप अपने पत्र में ही छाप दिया था। एस० एस० जैन कान्फ्रेस के समस्त सन्त्रियों से जो बिचार-विमर्श हुआ, वह आपसी समझौते से अधिक सम्बन्ध रखता है।

चुन्नीलाल कामदार जी तो स्पष्टतः यथार्थ और भावना का समन्वय करके चलने वाले व्यक्ति हैं।

अन्तिम निवेदन—

स्थानकवासी श्रमणों का यह सम्मेलन भारत में ही नहीं अपितु विश्व-भर में बेजोड़ है। इसने समाज की मांग नहीं अपितु विश्व की युगों की समस्या को सुलभाने में सहयोग देकर साधु-संस्था में नई प्रेरणा और नवीन चेतना तथा नव्य भव्य भावना उत्स्फूर्त करने का महान कार्य किया है।

साधु सम्मेलन संसार भर के लिये आदर्श बनेगा और श्रमण संस्कृति में नये प्राण डालेगा। यह सम्मेलन व्यक्ति-व्यक्ति के लिये जहाँ हर्ष, अल्हाद और स्नेहधारा का विषय बनेगा वहाँ यह समाजद्रोही श्रमण-विद्वेषी के लिये ईर्ष्या का भी कारण

होगा । इस सम्मेलन ने सैकड़ों वर्षों से चलती ईर्ष्याग्नियों पर तुषारापात किया । बिखरी हुई इकाइयों को एक सूत्र में पिरोया । पनपती हुई सम्प्रदायिक भावनाओं के सिरों को कुचला और बुद्धिवाद का तथा आत्मवाद का पथ प्रशस्त बनाया । युग-युग तक यह सम्मेलन बार-बार अमर रहे और जीवन-ज्योति जगाते रहे तथा समाज में, देश में, और दुनिया में आत्मिक तत्वों को जागृत करने का सन्देश देते रहे, ऐसी मेरी अमर भावना है ।

संघ का मूर्त स्वरूप—

श्रमण संघ का नाम—‘श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ’

श्रमण संघ का नाम—‘श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ’

संघपति ‘आचार्य’ कहलायेंगे और वे दो होंगे—

आचार्य—जैनाचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ।

उपाचार्य...श्री गणेशीलाल जी महाराज ।

समस्त कार्य विभाग मन्त्रियों को सम्भालना पड़ेगा । उनमें एक प्रधानमन्त्री होगा और कुल १६ मन्त्री होंगे ।

प्रधानमन्त्री—श्री आनन्द ऋषि जी महाराज । शेष अन्य मन्त्री होंगे ।

अब तक श्रमण संघ के सदस्य १४० साधु तथा ५०० के लगभग साध्वी हैं जिनके फार्म आ चुके हैं या आने वाले हैं ।

आचार्य पद महोत्सव-वैशाख शुक्ला त्रयोदशी ता० ७-५-५२ को एक बड़े समारोह के साथ इस संघ को मूर्तरूप दे दिया और दोनों आचार्यों को चादरें समर्पित की गईं । आचार्य जी महाराज

चूद्धावस्था के कारण सम्मेलन में उपस्थित नहीं थे । अतः उनकी चादर उनके प्रतिनिधि भू० पू० युवाचार्य श्री शुक्लचन्द जी महाराज को प्रदान कर दी गई जिससे जब भी वे पंजाब में पहुंचे, आचार्य जी महाराज को सौंप दें ।

इससे पहले मुख्य-मुख्य आचार्यों, उपाध्यायों तथा मुनिवरों के भाषण भी हुए, जिनमें मुझे भी कुछ कहना पड़ा । मेरे कुछ शब्द—

“मेरे से पहले बड़े-बड़े मुनिराजों ने सम्मेलन की भूमिका के विषय में आप सबको बता ही दिया है कि इस सम्मेलन के लिये कितने महान् पुरुषों की भावना काम कर रही थी । किन्तु जिस समय मेरा जन्म हुआ और मैंने इस सामाजिक क्षेत्र में आंखें खोलीं, उस समय इस सम्मेलन की भूमिका तैयार हो चुकी थी । इसलिये हमारा प्रश्न भूमिका करने का नहीं था, अपितु भवन-निर्माण और मूर्तरूप देने का ही प्रश्न शेष था ।

हम एक ओर मूर्तरूप की ओर व्यग्र मन से ताक रहे थे और दूसरी ओर सम्मेलन की विघ्न-बाधाओं को नष्ट करने के लिये सुरक्षा-पंक्ति खड़ी कर रहे थे ।

रुढ़िग्रस्त उन तत्वों की ओर जो कि सम्मेलन को इज्जत के साथ असफल कर देने की भावना लिये हुए थे उनके प्रति भी क्रान्ति, संघर्ष की भावना को लेकर आगे बढ़ रहे थे ।

किन्तु यह बड़ी प्रसन्नता का दिन है कि हम क्रान्ति की पहली सीढ़ी पर तो सफलतापूर्वक चढ़ गये । अब तो भविष्य का विचार करना है । क्या समाज की कोटि-कोटि भावना के बाद बने इस संघ के द्रोही को कोई स्थान देगा ? (नहीं, कभी नहीं, जनता की ओर से उत्तर) सम्प्रदायों, भिन्न-भिन्न नामा-

वलिबां, स्थानकों पर भिन्न-भिन्न नाम हटाकर एक संघ का नाम रखना होगा; क्या समाज इसके लिये तैयार है ? (बिल्कुल तैयार) 'श्री वधमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ जिन्दाबाद' के नारों के बीच में आचार्य श्री को श्रद्धांजलि देते हुए मैंने कहा— हमारे संघ की आत्मा कौन है ? आचार्य आत्माराम जी । और हमारे गण का ईश कौन है ? उपाचार्य गणेशी लाल जी के जयकारों के तुमुलघोष में मैंने अपनी ओर से उनका शासन अमर रहे की भावना व्यक्त करते हुए आशा और श्रद्धापूर्वक भावना और विनय के साथ नमस्कारांजलि अर्पित की और अपना आसन ग्रहण किया ।

मुनि जी प्रारम्भ से ही राष्ट्रवादी रहे हैं । राष्ट्रीय अहिंसा का आदर्श मुनि जी के विचारों में इतना ही है कि किसी भी राष्ट्र का इतना शक्तिशाली हो जाना कि उस पर कोई भी आक्रमण करने की जुरत ही न कर सके; यही राष्ट्र की सच्ची अहिंसा हो सकती है । क्योंकि हिंसा करना पाप है, हिंसा पनपने देना महापाप है, यही कसौटी झूठ, चोरी व्यभिचार और संग्रह पर भी लागू हो जाती है । जैसे कि झूठ बोलना पाप है किन्तु झूठ को पनपने देना या उसको फैलने के लिये वातावरण बनने देना महापाप है । चोरी और व्यभिचार की भी यही बात है ।

आशय केवल इतना है कि व्यक्ति से भूल हो जाना, स्खलन होना एक वैयक्तिक बात है किन्तु बुराई को समाज का संरक्षण मिल जाना बहुत खतरनाक है ।

बम्बई में मुनि जी ने प्राणिरक्षा और मांसाहार निषेध के लिये नये कदम उठाये । उन्होंने ३० जनवरी को गांधी निर्वाण दिवस पर कसाईखाने बन्द करवाने का प्रस्ताव बम्बई नगर

निगम से करवाया, फिर तो रामनवमी कृष्णाष्टमी, माहावीर जयन्ती आदि ६ दिनों के लिए केवल बम्बई में ही नहीं अपितु ६० म्यूनिसिपल कमेटियों में कसाईखाने बन्द कराने के प्रस्ताव पारित कर मांसाहार को सार्वजनिक रूप से वर्षभर में कुछ दिनों के लिए ही सही किन्तु सार्वजनिक रूप से निदिन्त तो करा दिया। यह बात १९५३ की है। शाकाहार के लिए काम करने वालों को यह नया दिशा-दर्शन मिला।

गोरक्षा के लिए बम्बई गोरक्षा समिति का निर्माण किया। गोहत्याबन्दी तथा गोसम्बर्धन दोनों कार्य एक साथ बम्बई से शुरू किये।

सर्वभाषा भाषी सम्मेलन के द्वारा मुनि जी भाषायी एकता लाना चाहते थे किन्तु भाषाविदों को राजनैतिक दल में फंसा देख बम्बई में सर्वधर्म सम्मेलन की स्थापना की। मुनि जी के विचारों में भाषा और धर्म को निहित स्वार्थी लोग भगड़े की जड़ बनाया करते हैं। उन्हीं झगड़ों से साम्प्रदायिकता, संकीर्णता एवं नफरत की भावना बढ़ती है। आपसी टकराव होते हैं। सैकड़ों हजारों वर्षों से साथ रहने वाले लोग एक दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं।

धर्म सम्मेलन मानवीय एकता का आन्दोलन है, साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का महामारी को समूल नाश करने की अचूक औषधि है। यही कारण था कि बम्बई धर्म सम्मेलन के अवसर पर जो धर्माचार्य एवं धर्मनेतागण आपस में कभी एकत्रित नहीं हुये थे वे सब एक मंच पर बैठ गये और धर्म के माध्यम से विश्व बन्धुत्व के आदर्श को जमीन पर उतारने के लिए मूल संकल्प हो गये।

पालणपुर, अहमदाबाद, अंकलेश्वर, सूरत होते हुए मुनि जी जब बम्बई के निकट पहुंचे तो बम्बई दर्शनार्थ आने वालों का तांता लग गया। बम्बई का जैनसंघ भारत में सबसे बड़ा संघ है, वैसे भी गुजराती, काठियावाड़ी कच्छी, मराठी एवं मारवाड़ी व पंजाबी जैनों का बहुत बड़ा समुदाय बम्बई में निवास करता है। जैन समुदाय में तो साधु सम्मेलन के कारण मुनि जी की चर्चा तो बहुत होने लगी थी। इसीलिए बहुत आग्रह पर बम्बई वाले मुनि जी को बम्बई ला रहे थे।

मार्ग में समुद्र के ज्वारभाटे के अनेक दृश्य, मछियारों की बस्तियों में धर्मप्रचार एवं समुद्र की खाड़ियों को पार करते हुए मुनि जी बम्बई पहुंच गये। बम्बई स्थित पंजाब जैन सभा के सदस्यों को मार्ग में मुनि जी की सेवा सान्निध्य का काफी अवसर मिला था और वे मुनि जी को आध्यात्मिक योगी और क्रान्ति-कारी नेता के रूप में मान चुके थे।

बम्बई में दो चातुर्मास मुनि जी के हुए। मुनि जी से बम्बई के पत्रकार, राजनेता एवं धर्मनेता बहुत प्रभावित हुये थे।

इस कार्य में सबसे बड़ा सहयोग मणिभाई दोषी का था। मुनि जी के विचारों को क्रियान्वित करने में श्री दोषी और श्री जगन्नाथ जैनी के अग्रतिम सहयोग को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

प्रचार के क्षेत्र में भी हरीश जैन के अविस्मरणीय योगदान को जैसे कभी तिरोहित नहीं किया जा सकता इसी प्रकार बम्बई के हजारों जैन भाइयों व बहनों का सहयोग भी नहीं भुलाया जा सकेगा।

धर्मसम्मेलन की नींव भी बम्बई में रखी गई और बम्बई

से चलकर लोनावला में बलि विरोध का आन्दोलन भी चालू किया गया ।

लोनावला से ६ मील दूर कारला पहाड़ियों में बहुत बड़ी-बड़ी विशाल गुफायें चौथी शदी की बनी हुई हैं । वहां पर कोकणी लोग वर्ष भर में एक बार एकत्रित होकर हजारों पशुओं की बलि करते हैं ।

पशु-बलि विरोधी भावना का जन्म भी मुनि जी के हृदय में एक स्वप्न से हुआ । दिवंगत परममान्य मुनि जी चौथमल जी म० रात्रि के अंतिम पहरों में स्वप्न में दिखाई दिये और उद्बोधन देने लगे, “सुशील ! चलो, और कारला गुफा पर होने वाली पशु बलि को बन्द कराओ । मैं तुम्हारे साथ हूँ ।” ये शब्द स्वप्न में मुनि जी को मिले । किन्तु मुनि जी कहते हैं कि आज भी वह दिव्य ध्वनि मेरे रोम-रोम में प्रतिध्वनित हो रही है । मुनि जी प्रातःकाल होते ही गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर गुफा की ओर चल पड़े और दो दिन के प्रयास से कुछ सफल हुये और अंत में गाडगे जी महाराज ने वह पशु बलि सदा के लिए बन्द करा दी ।

मुनि जी मानते हैं कि मनुष्य में अनन्त शक्ति है, कास्मिक पावर है और जड़-चेतन पर उसका गहरा असर डाला जा सकता है । लोनावला में एक विचित्र घटना घटी कि दिनकर भाई (सैसन जज मुख्य न्यायाधीश) किसी पक्षी पर निशाना साध रहे थे उधर से मुनि जी आ रहे थे, मुनि जी से नहीं रहा गया उन्होंने जज सहाब की बन्दूक पर हाथ रख दिया और कहा कि पक्षी पर बन्दूक नहीं चलेगी हिंसा पाप है हिंसा से बचना मनुष्य का धर्म है । पक्षी ने आपका कुछ बिगाड़ा नहीं अपितु आपके

वातावरण को गुञ्जित करता रहा है ।”

जज महोदय ने टाल दिया और ‘हाँ:हाँ’ कहकर मुनि जी को वहाँ से भेज तो दिया किन्तु उनके चले आने के बाद जब बन्दूक का निशाना साधन चाहा तो बन्दुक ने चलने से इन्कार कर दिया । बहुत प्रयास करने पर भी बन्दूक नहीं चली तब जज महोदय को पक्का विश्वास हो गया कि बन्दूक मुमि जी ने बाँध दी है ।

जज महोदय मुनि जी के पास पहुंचे, कोठी लेकर गये ‘बन्दूक दिखाई’ आग्रह करके हस्त स्पर्श करवाया और फिर क्या था बन्दूक चल पड़ी, काम करने लगी ।

मुनि जी स्वयं असमंजस में पड़ गये कि यह क्या हुआ, किन्तु प्राकृति का विचित्र खेल है । जज महोदय चरणों में पड़ गये, शाका-हारी बने, निरपराधी पशुओं का शिकार सदा के लिए छोड़ दिया ।

लोनावला में सर्पों की दुनिया का विचित्र परिचय हुआ । लोनावला में सर्प बहुत हैं । प्रतिदिन किसी न किसी सर्पराज की मुलाकात मुनिजी से हो जाती । मुनि जी ने सर्पों के सम्बन्ध में बड़ी जानकारी प्राप्त की । सर्प का साक्षात्कार होते मनुष्य स्वयं सर्प से काग हो जाता है अन्यथा सर्प भी प्रेमभरी अद्भुत दृष्टि से निहारते ही वशवर्ती हो जाता है ।

मुनि जी ने भयानक सर्पराज को तीन बार छेड़ा भी, तीन बार छेड़ा भी, तीन बार ही सर्प फुंकारता हुआ आक्रामक बना किन्तु मुनि जी के नेत्रों में नेत्र डालकर देखता और शान्त हो जाता है ।

मुनि जी का निश्चय है कि सर्प नेत्रों में से पढ़ता है और उससे अनुमान करता है कि व्यक्ति क्या चाहता है । मुनि जी लोनावला से उज्जैन की ओर चल पड़े ।

प्रेरक भावनायें

धर्म एवं सम्प्रदायों को लेकर चलने वाली कुरीतियों और अन्ध परम्पराओं के विरुद्ध मोर्चा लेने की आदत ने मुनिजी को सरदार शहर में चातुर्मास करने पर विवश किया। पारस्परिक जैन सम्प्रदायों में भी कहीं-कहीं गहरा मन-मुटाव और अविश्वास का वातावरण रहता है—उसके दर्शन यहाँ हुये।

जनता की अपार भीड़। छोटी-छोटी बातों पर जैन सम्प्रदायों में आपसी छींटाकशी बहुतायत से परिलक्षित हुई। कर्मकाण्ड अथवा कोरे क्रियाकाण्ड के कारण हर सम्प्रदाय में थोथा अभिमान, कपटाचार और असत्य भाषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

सरदार शहर में कितने लोग मुनिजी के पक्ष-विपक्ष में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण बोले, किन्तु उनकी सत्यता, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता का लोहा सभी तरफ अचूक एवं प्रखंड रूप में स्वीकार किया जाता है।

कतिपय संकीर्णतावादी लोगों ने एक बात कही कि मुनि जी नाई से नख कटवाते हैं तो साधु कैसे ?

स्वसम्प्रदाय के लोगों ने आग्रह किया कि मुनिजी कह दें कि उन्होंने नख नहीं कटवाये क्योंकि अगर मुनि जी इनकार कर

दें तो विपक्षियों को विरोध का अवसर ही नहीं मिलेगा—किन्तु मुमि जी ने तो भरे व्याख्यान में उद्घोषणा कर दी नख कटवाये हैं ।

नख कटवाने के पीछे शस्त्र की भावना शृंगार प्रतिषेध है कि मनोवृत्ति की संकीर्णता से खींच-खांच की जाती है ?

गृहस्थी की सेवा नहीं लेना—अतः नाई से भी नख नहीं कटवाना । बात सही है, परावलम्बी जीवन अब न बने ? किन्तु यह कैसे संभव है कि साधु गृहस्थी से सर्वथा सेवा न ले—आप्रेशन, चिकित्सा-हड्डी मोच आदि सब इलाज गृहस्थी डाक्टर से ही कराना होगा और सब संत कराते भी हैं किन्तु जनता में साफ बात नहीं की जाती, जिस के कारण अंध-विश्वास बढ़ता है । पारस्परिक द्वेष बुद्धि भी बढ़ती है ।

सरदार शहर से चातुर्मास के बाद तारानगर, हिसार, हांसी, रोहतक होते हुये—१९५७ में दिल्ली पहुंचे ।

×

×

×

मुनिजी का डा० राजेन्द्र प्रसाद जी से बड़ा गहरा सम्बन्ध था । वह भी राजमहल में संत की तरह निवास करते थे । कपड़ा फटा है, बटन लगे हैं या नहीं, उन्हें मालूम नहीं पड़ता था, किन्तु राष्ट्र के प्रति इतने जागरूक थे कि एक दिन आंखों में आंसू भर कर कहने लगे कि तिब्बत की पराधीनता का शाप तो हमारे सिर पर अवश्य चढ़ा होगा । तिब्बत में लोगों को कतल किया गया । चीन ने उन्हें पराधीन बनाया, उनका खून बहा और हम चुपचाप देखते रहे । मेरा देश, मेरे देश का सबसे बड़ा नेता और मैं राष्ट्राध्यक्ष होने के नाते साक्षी द्रष्टा की तरह यह सब पाप

देखता रहा, यह पाप हमारे देश को खा लेगा और हमें इसका एक-न-एक दिन पश्चाताप और प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

उनकी आंखें सजल हो गई थीं और वे अन्दर से अपनी मूक पीड़ा को व्यक्त करते हुए ग्लानि से भर गये थे।

× × ×
विश्व धर्म सम्मेलन में पं० जवाहरलाल नेहरू जाने को तैयार नहीं थे और साथ में खुला विरोध भी कर रहे थे। एक दिन डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनि जी से कहा कि आप पण्डित जी से अवश्य मिल लें। उनका रुख धर्म-सम्मेलन-विरोधी है—अगर आप उन्हें अनुकूल नहीं बना सके तो हम में से कोई भी नहीं जा सकेगा।

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी मुझे बुलावे तो मैं जाऊंगा, किन्तु मिलने के लिये मैं स्वयं कैसे कहूं। तीसरे दिन पण्डित नेहरू जी की ओर से पत्र आया कि आप ६ बजे प्रातः आकर मिल लें। वास्तव में यह मुलाकात स्वयं राजेन्द्र प्रसाद जी ने ही करवाई थी।

वार्तालाप अत्यन्त उग्र था, किन्तु परिणाम सुखद रहा। पण्डित जी चट्टान की तरह अड़ गये कि मैं धर्म सम्मेलन में नहीं जाऊंगा। मुनि जी अड़ गये कि आप को चलना अवश्य है !

बैठी भावना का एक क्षणिक प्रभाव इतना चमत्कारी निकला कि पण्डित जी मान गये कि अच्छा मैं अवश्य आऊंगा। पं० जी ने १७ गवम्बर १९५७ में लाखों लोगों के सामने एक बात बड़ी विचित्र कही कि मैं सम्मेलन में नहीं आना चाहता था लेकिन ऐसी कौन सी हस्ती है जो मुझे यहां खींच कर

ले आई !

दैविक शक्ति का अपूर्व रूप है ।

×

×

×

सन् १९६२ की बात है । पं० जी ने एक बार भेंट-वार्ता के प्रसंग में रोष में आकर कहा कि धर्म सम्मेलन कुछ कर सकता है तो मास्टर तारा सिंह को क्यों नहीं समझाते वे एक ही रट लगाते हैं कि पंजाबी सूबा बनायें, अब वह उपवास करके बैठे हैं । मुनिजी आप कुछ कर सकते हैं ?

मुनि जी ने देखा कि पं० नेहरू करुणा एवं मानवीयता के पुंज थे । उनसे मास्टर तारा सिंह की न बात मानी जाती थी और न ही उनके उपवास का दुख देखा जा रहा था । उन्होंने कहा कि पं० जी जहां राजनीति असफल हो जाती है वहाँ धर्म-नीति अवश्य सफल हो जाती है । मुनि जी की आकस्मिक पंजाब यात्रा का कार्यक्रम बन गया । वे असृससर पहुंचे ।

मास्टर तारा सिंह भी मिलने आये । वे भी अपने जीवन में कभी जैन साधु के पास या जैन स्थानक में नहीं आये थे । लम्बी बात हुई । मास्टर जी इतने प्रभावित हुये कि वे मान गये कि जब तक चीन और पाकिस्तान के युद्ध का खतरा है, पंजाबी सूबे की मांग नहीं करेंगे और उन्होंने पी० टी० आई० तथा अन्य सभी समाचार एजेंसियों और पत्र-संवाददाताओं को बुला कर उद्धोषणा कर दी कि मेरी मुनि जी से बात हो गई है और मैं पंजाबी सूबे की मांग तब तक नहीं करूंगा जब तक चीन और पाकिस्तान से युद्ध का खतरा है ।

मुनि जी ने पं० जी को फौरन पत्र लिखा कि धर्म-नीति सदा विजयी होती है । दस मिनट में यह सारी समस्या सुलझ

गई जिसके लिये आप भी और सारा राष्ट्र परेशान हो रहा था ।

×

×

×

पं० जी होते थे कि धर्म सम्मेलन इस देश की सामान्य जनता को आपस में जोड़ने का काम करे, हिन्दू:मुस्लिम सभी वर्गों को मन से मिलावे ।

एक बार पं० जी ने १९५७ में धर्म सम्मेलन से पूर्व मुनिजी को बुलाकर कहा कि धर्म सम्मेलन किसी हाल (कमरे) में या लाल किले में कर लो । खुले मैदान में मत करो, क्योंकि आज-कल धर्म के नाम पर लोग नहीं आते । रामलीला मैदान में तो लाखों लोग चाहिये ।

क्षण भर आत्मगत चिंतन कर मुनि जी ने कहा था कि आप देखेंगे कि रामलीला मैदान में बैठने की जगह मिलनी कठिन हो जायेगी, खचाखच भर जायेगा ।

पं० जी बुद्ध-जयंती सम्मेलन में जनता के केवल कुछ हजार लोगों की उपस्थित से क्षुब्ध थे ।

पण्डित जी बोले, “मुनि जी आप मान जाइये, जनता नहीं आती है, सेठ अचल सिंह, सेठ गोविन्द दास, सभी सम्मेलन प्रबन्धकों से पण्डित जी ने कहा कि मुनि जी धुन के पक्के हैं । वे मानते नहीं, आप उन्हें समझा दें कि सम्मेलन खुला न करें ।’

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी एक साधु का चमत्कार तो देखें कि आत्मबल और दृढ़ इच्छा-शक्ति में कितना अपूर्व रहस्य छिपा है ।

सम्मेलन में जब पण्डित जी आये, उस समय रामलीला

मौदान अपार जनता से खचाखच भरा पड़ा था । पण्डित जी ने मुनि जी से कहा कि मैंने मान लिया कि आप सही थे । इतनी जनता ऐसे जलसों में, कोई विलक्षण बात अवश्य है ।

मुनि जी जब बोलने के लिये खड़े हुए तो पण्डित जी उनके भाषण का सारांश डा० राधाकृष्णन् की इंगलिश में समझाते रहे और जनता के साथ लगातार १०-१२ बार ताली बजाते रहे । जब वे भाषण देकर बैठे तो उन्होंने सफल सम्मेलन की बधाई दी ।

×

×

×

और जो भी कोई पण्डित जी से मुनि जी के बारे में पूछता तो वह उनके तीन गुण बताते थे, बहुत बढ़िया वक्ता, बहुत बढ़िया नेतृत्व ।

×

×

×

डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनिजी से पूछा, सम्मेलन पर कितना खर्च आया होगा । मुनिजी ने पूछा आपका अनुमान कितना है ? बोले—दो से पांच लाख तक । मुनिजी ने कहा—केवल २२ हजार । क्योंकि सारा बोझ समाजपर बंट गया ।

सेवा करने वाले मेहमानों को अपने घर पर उतारने वाले भारतीय धर्म प्रतिनिधियों को ठहराने वालों ने सम्मेलन से कुछ नहीं लिया और देश-विदेश के प्रतिनिधि अपूर्व प्रशंसा के प्रमाण-पत्र देकर गये ।

धार्मिक कृत्य तो समाज के सहयोग से ही होने चाहियें ।

महत्वपूर्ण घटना

विश्व धर्म सम्मेलन

आज के मानव को जिस अपार कष्ट और घोर संकट में से गुजरना पड़ रहा है उसका सामना कदाचित् ही कभी उसको करना पड़ा होगा। दो महायुद्धों की संहारलीला उसकी आँखों के सामने हो चुकी है। दूसरी संहारलीला पहली से भी कहीं अधिक भीषण और व्यापक थी, जिनको उन्हें भेलना पड़ा, उनका हृदय उनके स्मरण-मात्र से कांप उठता है। हीरोशिमा और नागसाकी पर किया गया अणुबम का प्रयोग मानव-इतिहास की सबसे अधिक कठोर दुर्घटना है जिसको संसार का इतिहास कभी नहीं भूल सकता। तीसरे शीत महायुद्ध की काली घटायें भी निरन्तर उसके सर पर मंडरा रही हैं। उसके नाम पर महाविनाश की जो घातक सामग्री जुटाई जा रही है उसके कारण सारा ही विश्व बारूदघर-सा बनता जा रहा है। उसमें साधारण से विस्फोट से भी जो महाविनाश होना सम्भव है उसकी कल्पना कर सकना

कुछ कठिन नहीं है । परन्तु धन्य है मानव और धन्य है उसकी आशा, विश्वास, धैर्य तथा साहस, जिनके बल पर वह इस महा-विनाश की अग्नि-वर्षा में भी अपना जीवन निबाह रहा है और भविष्य में भी निभाने की आकांक्षा रखता है । वह निरन्तर अपने मार्ग की खोज और उसका निर्माण करने में लगा हुआ है । उसने इस संसार में जब से आंखें खोलीं सभी से वह इस जीवन-संघर्ष में संलग्न है ।

पहले महायुद्ध की संहारकारी ताँडवलीला के गर्भ में से ही उस राष्ट्रपरिषद् का जन्म हुआ था जिसने महायुद्ध से पीड़ित और त्रस्त मानव को नए जीवन की आशा प्रदान की थी । दूसरे महायुद्ध की कहीं अधिक घातक और व्यापक विनाश-लीला के गर्भ में से ही संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ । आज तीसरे (शीत) महायुद्ध की कैसी भी घोर काली घटायें क्यों न मंडरा रही हों, परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ का नया संगठन पहले की अपेक्षा शांति और सुरक्षा के लिये कहीं अधिक बड़ा और प्रभावशाली संरक्षण है । उसमें युद्ध की चिंता की सामर्थ्य भी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति-शाली एवं प्रभावशाली है । यदि एक ओर विनाश की सामग्री का हिमालय का-सा ऊँचा अम्बार लगता जा रहा है, तो दूसरी ओर महान् आकाश की तरह मानव में वह शक्ति भी व्याप्त हो रही है जो उसकी चुनौती को स्वीकार करने के लिये तैयार है ।

पहले महायुद्ध के बाद इथोपिया जैसे छोटे राज्य पर परिषद् की आंखों के सामने वैसा ही बलात्कार होना सम्भव था जैसा कि कौरवों की सभा में पाण्डवों के सम्मुख द्रोपदी का चीर हरण

किया गया था, परन्तु आज उसकी पुनरावृत्ति यदि सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। उसके विरुद्ध आज जबरदस्त आवाज उठाई जा सकती है और विश्व का लोकमत उसके लिए हाथ बढ़ाने को रोकने का साहस कर सकता है। कोरिया, हिन्द चीन तथा मिस्र और हंगरी की घटनायें आज के यानव की बढ़ती हुई शांतिप्रियता की स्पष्ट साक्षी हैं, भले ही उसमें अभी वह सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हुई, जो स्थायी शांति की सुदृढ़ नींव रख सके। फिर भी आज किसी छोटे-से-छोटे राष्ट्र की भी स्वतन्त्रता का सहसा अपहरण नहीं हो सकता। आज बड़ी-से-बड़ी और गम्भीर-से गम्भीर समस्या के हल के लिए युद्ध के पर्याय के रूप में आपसी बातचीत पर कहीं अधिक जोर दिया जाता है और राजनीतिक क्षेत्र में भी पंचशील तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के धार्मिक तत्वों का प्रतिपादन विशेष आग्रह से किया जाने लगा है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की महापरिषद् द्वारा बिना विरोध शांति-पूर्ण सहअस्तित्व के भारत के प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना आशा की सुनहरी किरण कहा जा सकता है।

इस दृष्टि से युनेस्को के प्रादुर्भाव की कहानी कहीं अधिक आशाप्रद और उत्साहप्रद है। युनेस्को इस समय संयुक्तराष्ट्र संघ की शाखासंस्था के रूप में काम कर रही है, विधिवत् उसकी स्थापना ४ नवम्बर १३२६ को २० देशों ने मिलकर इंग्लैंड में की थी। परन्तु उसके लिये परस्पर विचार और चर्चा १९४२ में तब प्रारम्भ कर दी गई थी, जबकि महायुद्ध चरम सीमा पर था। इंग्लैंड का जीवन भी खतरे से खाली नहीं था और सारा यूरोप वन की तरह युद्ध के दावानल में भस्म हो रहा था तब ६ मित्र देशों के शिक्षामन्त्री लन्दन में मिले उन्होंने इस तरह के

संगठन की आवश्यकता और संभावना पर विचार किया । काफी विचार-विनिमय के बाद १९४५ के नवम्बर महीने में लन्दन में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया उसमें इसका नामकरण किया गया और विधान बनाया गया । उसके कार्य का माध्यम शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति रखा गया ।

समस्त मानव समाज को इन तीन आधारों पर एक ओर संयुक्त करने का सराहनीय प्रयत्न इस संगठन की ओर किया जा रहा है । प्रकारान्तर से इस संगठन का निर्माण करके यह स्वीकार किया गया है कि अर्थनीति और राजनीति मानव को एक ओर संयुक्त करने में सफल नहीं हो सकी । अर्थनीति के कारण जिन पूँजीवादी स्वार्थी और निहित औद्योगिक हितों का जन्म हुआ उन्होंने मानव-मानव के बीच एक बहुत बड़ी और चौड़ी खाई पैदा कर दी । राजनीति के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की आसुरी लालसा तथा राक्षसी यशुत्वन्कांक्षा को पैदा करके जिस घोरण और उत्पीड़न को जन्म दिया गया उससे परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, घात-प्रतिघात और हिंसा-प्रति हिंसा की दुर्भावना चारों ओर समा गई । अर्थ-नीति और राजनीति का दिवाला पिट गया इसलिए उनको तिलांजलि देकर शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति का सहारा लिया गया । शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति पर भी पक्षपातपूर्ण स्वार्थों की एक भोंडी तह जम गई ।

शिक्षा का उद्देश्य मानव की स्वाभाविक शक्तियों का विकास न कर, एक-दूसरे राष्ट्र के प्रति विद्वेष एवं अंध-पक्षपात पैदा करना बना लिया गया था । विज्ञान मानव की सेवा का साधन न रह सका । वह राजनीतिज्ञों के हाथ का निमित्त बन गया ।

इसी प्रकार संस्कृति भी एकता-सम्पादन करने का साधन न रह सकी और उसको विभिन्न जातियों तथा समाजों में विद्यमान भिन्नता अथवा भेदभाव का प्रतीक मान लिया गया। फिर भी उसका वातविक रूप उसकी आंखों से ओझल नहीं हुआ, वह निराश होकर उसके उस स्वरूप को स्पष्ट करने में लग गया। उदाहरण के लिए शिक्षा में इतिहास का मुख्य स्थान हैं और इतिहास की वर्तमान शिक्षा इतनी दूषित है कि वह केवल उन युद्धों अथवा महायुद्धों के विवरण का, संग्रह मात्र रह गया है। जिन्होंने यनुष्य को मनुष्य का, समाज को समाज का और देश को देश का अथवा राष्ट्र को राष्ट्र को राष्ट्र का विरोधी अथवा शत्रु बनाया है। इन शत्रुतापूर्ण कांडों का वर्तमान इतिहास पुराने घावों को हरा-भरा बनाये रहने का ही काम करता है। इसलिए यूनेस्को की ओर से इतिहास के परिष्कार का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर शुरू किया गया है।

इतिहास के परिष्कार की आवश्यकता भी तब अनुभव की गई जबकि यह देख लिया गया कि इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकों और ऐसी ही अन्य पाठ्य सामग्री द्वारा बच्चों को परस्पर एक-दूसरी जाति में मेल-मिलाप और भाईचारा पैदा करने में सहायक न होकर परस्पर विद्वेष एवं विरोध ही पैदा करती है। १९४८ में इस सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित हुई। १९५० में इतिहास और पाठ्य पुस्तकों के संशोधन में एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्य के लिए विभिन्न समितियां नियुक्त की गई और उन्होंने अपने सुपुर्द किए गए कार्य को बड़ी तत्परता के साथ किया। इनमें से दो या दो से अधिक देशों की वे समितियां बहुत उपयोगी सिद्ध हुई जिन्होंने एक-दूसरे के

इतिहास सम्बन्धी साहित्य की छानबीन इस दृष्टि से की कि उनमें से परस्पर विरोधी, भ्रमपूर्ण और एक दूसरे पर आक्षेप करने वाले विवरण न दिए जायें ।

फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा बेल्जियम और नारवे के इतिहास के अध्यापकों ने अपने-अपने यहां के इतिहास की पुस्तकों का परिशीलन इसी दृष्टि से किया उन पर विचार करके सही दृष्टिकोण देने का प्रयास किया गया । १९४७ में अमेरिका की शिक्षा परिषद् ने इस बात की छानबीन की कि वहां की पुस्तकों में एशियाई संस्कृति, सभ्यता और जीवनस्तर के सम्बन्ध में पश्चिम के उद्योग-प्रधान दृष्टिकोण से विचार किया गया था जो वहां के लोगों में पूर्व के लोगों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार भ्रांतियाँ पैदा करने और उनको गुमराह करने वाला था, इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के लोगों में पूर्व के लोगों के प्रति अहंभाव पैदा हो गया और उनमें अपने को बड़ा और दूसरों को हीन मानने की प्रवृत्ति घर कर गई । इसी नवीन दृष्टिकोण से मानव जाति का विस्तृत इतिहास भी यूनेस्को की ओर से लिखा जा रहा है । तात्पर्य यह है कि यदि वास्तव में शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के आधार पर मानव के संयुक्त परिवार की सुदृढ़ नींव डालनी अभीष्ट है तो उसके लिए इनके वास्तविक रूप को स्पष्ट करके अनुकूल भूमि तैयार करनी होगी और उसका तैयार किया जा सकता तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि इतिहास और पाठ्यपुस्तकों का पूरी तरह संशोधन न किया जाये ।

आज के विज्ञान का चाहे कैसा भी दुरुपयोग क्यों न किया जा रहा हो परन्तु यूनेस्को की ओर से इस तथ्य को स्वीकार

कर लिया गया है कि विज्ञान किसी देश-विशेष अथवा राष्ट्र-विशेष की वपौती नहीं है। वह सम्पूर्ण मानवजाति की सम्पत्ति है, जिसका लाभ सबको समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर अणु-शक्ति से लाभ उठाने का अवसर सब देशों के लिए सुलभ करना आवश्यक समझा गया है जिनका यथेच्छ विकास तथा प्रगति नहीं हुई और जो आधुनिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इसी प्रकार विज्ञान को मानव के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है और वह संसार का निमित्तमात्र बना नहीं रह सकता।

यह अत्यंत शुभ लक्षण है कि इन दिनों राजनीति की अपेक्षा संस्कृति को विशेष महत्व दिया जाने लगा है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि संस्कृति के नाते समस्त मानव एक ही जाति के सदस्य हैं। देश, समाज तथा भूगोल की ऐसी ही अन्य सीमाएं पारस्परिक सांस्कृतिक सम्बन्धों के लिए बाधक नहीं बन सकती। राजनीतिक सम्बन्धों की तुलना में सांस्कृतिक सम्बन्धों पर अधिक भरोसा किया जाने लगा और सांस्कृतिक संधियों का एक नया सिलसिला प्रारम्भ हो गया है। आपसी भाई-चारे के लिए सदियों के पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों को खोज तथा छान-बीन की जाने लगी है। उनके लिए इतिहास के पुत्रों और पुरातत्व की सामग्री का विशेष अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

यूनेस्को के प्रादुर्भाव और उसके प्रत्यनों के इस विवेचन से यह प्रकट है कि मनुष्य ने आज भी हार मानना अथवा निराश होना नहीं सीखा है। वह थककर भी आगे बढ़ता रहता है। और गिर-गिरकर भी उठता रहता है। नए मार्ग के निर्माण में वह

हमेशा लगा रहता है। निराश होना वह जानता नहीं। प्रश्न यह है कि शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के क्षेत्र में वह जो नया उद्योग या प्रयोग कर रहा है वह धर्म के क्षेत्र में क्यों नहीं किया जा सकता ? धर्म के सम्बन्ध में इतना निराश क्यों हो गया है ? क्यों उसने उसके सम्बन्ध में पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेते हुए उसको सदा के लिए तिलांजलि दे दी है ? आज के राजनीतिज्ञों ने यह क्यों मान लिया है कि राजकाज में धर्म को अर्धचन्द्र देना ही श्रेयस्कर है ? प्रायः सभी प्रगतिशील और विकासोन्मुखी राष्ट्रों ने एक स्वर से धर्मनिरपेक्ष आदर्श को सर्वोत्तम मान लिया है, धर्म को प्रगति और विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाँधा समझ लिया गया है। हमारे देश में इसी आदर्श को प्रतातंत्री संविधान में अपनाया गया है।

ऐसा अकारण ही नहीं किया गया है। जिन घटनाओं की यह अवश्यंभावी प्रतिक्रिया है उन पर कुछ गम्भीर विचार अत्यन्त आवश्यक है और यह गम्भीर विचार हो विश्व धर्म सम्मेलन की मूल-भूत प्रेरक भावना को जन्म देने वाला है।

आज राजनीति और अर्थनीति को जिन कारणों से दिवालिया मान लिया गया है वे सब कारण धर्म पर भी लागू होते हैं। यदि अर्थनीति और राजनीति के कारण मानव में स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी आसुरी लालसा पैदा होकर एव उत्पीड़न की दुर्भावनाओं का जन्म हुआ है तो धर्म के नाम पर भी ऐसी दुर्भावनाएं कुछ कम पैदा नहीं हुईं। कभी सभी देशों में धर्म का बोलवाला था और उसके नाम पर सभी देशों में भीषण लड़ाइयाँ लड़ी गईं। मानव, मानव के खून का प्यासा बन गया। धर्म युद्ध अथवा क्रुसेड के नाम से यरुशलम में ईसा की कब्र के लिए कैसा

भयानक नरसंहार किया गया ! १२० वर्षों तक वह नर-संहार जारी रहा और धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उस महापुरुष की कब्र पर कब्जा करने के लिए लाखों की कब्रें बना दी गई, जिसने एक गाल पर चपत लगाने पर दूसरा गाल आगे कर देने का उपदेश दिया था और जो शांति एवं अहिंसा का देवदूत था । धर्म का यह कैसा घोर पतन था !

इसी प्रकार रोमन—कैथोलिकों और प्रोटेस्टेण्टों ने एक-दूसरे पर कौन से भीषण अत्याचार धर्म के नाम पर नहीं किए ? जापान में बौद्धों और ईसाइयों में कभी कैसी हिंसा प्रतिहिंसा मची हुई थी ? अरब के इस्लाम के अनुयायियों ने धर्मोन्माद में क्या नहीं किया ? हमारे अपने ही देश में एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों ने एक दूसरे के गले पर तलवार चलाने में कभी कोई संकोच नहीं किया । शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध आदि सब एक-दूसरे के शत्रु बने रहे । एक के धर्म-स्थानों को नष्ट करके उनके स्थान पर अपना धर्म स्थान बनाने में सारा पुरुषार्थ लगा दिया गया । राजा जिस धर्म का अनुयायी होता था प्रजा पर जबरन उस धर्म को थोपा जाता था । और प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने धर्म को ही सब कुछ मान कर दूसरे को मिथ्या मान बैठता था और इस भ्रान्त धारणा के कारण चारों ओर संघर्ष, अशांति, कलह, ईर्ष्या, द्वेष तथा वैमनस्य पैदा होकर समाज के जीवन में कष्ट, क्लेश और अशांति का संचार होता रहता था । जिस धर्म की सुख का साधना माना गया था वही दु-ख का कारण बन गया ।

व्यक्तिगत जीवन में भी धर्म के कारण कुछ ऐसी भ्रममूलक भावनायें तथा धारणाएं घर कर गई कि व्यक्ति का जीवन भी

दुःख, कष्ट और क्लेश का केन्द्र बन गया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि धर्म की वास्तविक भावना सर्वथा लुप्त हो गई। वैदिक धर्म, सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम आदि अजायब-घर की भांति नाना पंथों, मतों तथा सम्प्रदायों के संग्रहालय बन गए। न विश्वास एक रहा, न धर्म-स्थान एक रहा, न धर्म न आराध्य देवी या देवता एक रहे और न धर्मग्रन्थ के चिह्न भी ऐसे और इतने बन गए कि उन पर लाठियाँ शुरू हो गईं। कंठी, माला जनेऊ, चोटी, तिलक तथा ऐसे ही अन्य चिह्न सब भेदभाव के समर्थक बन गए। राम और कृष्ण के नाम पर भी विरोध की भावना प्रबल बन गई। धर्म के नाम पर कोई भी ऐसी चीज नहीं रही जो मानव-मानव में सहानुभूति, सहृदयता और वंधुभाव पैदा कर सकती। परिणाम यह हुआ कि मानव के हृदय में से धर्म का महत्व मिट गया। उसने उसको सर्वथा निरर्थक मान लिया। व्यक्ति के जीवन में से इस प्रकार धर्म के महत्व का अन्त होने पर समाज और राजकाज में उसके महत्व के लिए कोई स्थान रहना सम्भव न रहा, भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायियों को अपना राग और अपनी-अपनी डफली बजाते देख राजनीतिज्ञों ने उनसे अपना पिंड छुटाने में ही अपनी खैर मान ली।

देश के दुर्भाग्य-पूर्ण विभाजन के समय धर्म के नाम पर जो विभत्स कांड हुए उनके कारण धर्म का रहा-सहा महत्व भी सर्वथा नष्ट हो गया। धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहाई गईं। घर, गांव व सहर जलाये गये। दुकानें और घर लूटे गये। कितनी ही माताओं की गोद खाली कर दी गईं। पत्नियाँ पतिविहीन तथा पति पत्नीविहीन कर दिये गये और लाखों को अपने बाप-दादाओं के घरों से अलग करके अनाथ और बेघर

वना दिया गया । इन सारे कांडों को अपनी आंखों से देखने वाले मानव के हृदय में धर्म के लिये कोई श्रद्धा, आदर अथवा निष्ठा कैसे रह सकती थी ? इसका जो परिणाम होना सम्भव था वही हुआ हमारे देश में भी राजकाज के क्षेत्र में धर्म को अर्धचन्द्र दे दिया गया ।

परन्तु धर्म के सम्बन्ध में इनको अन्तिम निर्णय नहीं माना जा सकता । जीवन के अन्य क्षेत्रों में पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेना हमको शोभा नहीं दे सकता । धर्म में पैदा हुई अथवा धर्म के नाम से पैदा की गई बुराइयों को दूर न करके धर्म को ही दूर कर देना मनुष्य की मनुष्यता के लिये शोभास्पद नहीं है । यदि वह परस्पर मैत्रीभाव पैदा करने के लिये पाठ्यसामग्री और इतिहास का संशोधन करते हुए नया इतिहास लिखने की भी सामर्थ्य, हिम्मत और विश्वास अपने में रखता तो धर्म के सम्बन्ध में उसको ऐसा क्यों नहीं करना चाहिये और क्यों उसके सम्बन्ध में सर्वथा निराश हो जाना चाहिये ?

धर्म का बहिष्कार न करके परिष्कार करने का काम सदा से ही होता आया है । मानव कमजोरियों का पुतला है । कमियां उसमें सम्भवतः पाई जाती हैं । कभी भी किसी ने उसकी उन कमियों अथवा कमजोरियों के कारण मानव जाति को मिटा देने का विचार नहीं किया, अपितु मानव के संशोधन अथवा परिष्कार अथवा सुधार भी उसी कार्यक्रम से निरन्तर चला आ रहा है, धर्म का संशोधन उसका एक मुख्य अंग है । उसमें भी उसको उसी विश्वास के साथ लगा रहना चाहिये । निराशा कोई कारण इसलिये भी नहीं होना चाहिये कि मानव के जन्म का यह

सिलसिला बन्द नहीं हो सकता और उसके जन्म के साथ उसकी कमियां और कमजोरियां भी जुड़ी हुई हैं। जब तक सृष्टि का यह सिलसिला जारी रहेगा तब तक कमियों और कमजोरियों को दूर करने का सिलसिला भी जारी रखना चाहिये और अपनी कमियों तथा कमजोरियों के कारण जब कि मनुष्य धर्म को विकृत करने में भी पीछे नहीं रहता तो धर्म के परिष्कार का सिलसिला बन्द क्यों होना चाहिये ?

इतिहास साक्षी है इस बात का कि यह सिलसिला कभी भी बन्द नहीं हुआ। अनेक वेद अनेक उपनिषद्, अनेक दर्शन और अनेक स्मृतियाँ तथा अन्य अनेक धर्म ग्रन्थ इसी बात के सूचक हैं कि धर्म के शोध का यह शुभ कार्य सदा ही निरन्तर होता रहा है। श्रीकृष्ण, गौतम, महावीर, शंकर तथा मध्यकालीन सन्तों और उनके बाद जन्म लेने वाले अनेक महात्माओं ने भी इस सिलसिले को जारी रखा। मानव की देह के समान मानव का मन और आत्मा भी विभिन्न प्रकार के रोगों के शिकार हो सकते हैं। शारीरिक रोगों को दूर करने के लिये अनेक प्रकार की दवाइयों अथवा औषधियों के प्रयोग की तरह आत्मिक व मानसिक रोगों को दूर करने के लिये अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग निरन्तर होता रहना चाहिये और दोनों की शोध एवं परिशोध का कार्य भी निरन्तर होता रहना आवश्यक है।

आयुर्वेद के प्रयोग शारीरिक रोगों को दूर करने के लिये जैसे आवश्यक हैं वैसे ही मानसिक तथा आत्मिक रोगों के निवारण के लिये धार्मिक प्रयोगों की अनिवार्य आवश्यकता है। उनके शोध एवं परिशोध भी वैसे ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, अन्यथा पानी के रुक जाने से जैसे उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती

है वैसे ही जीवन के वे सब धार्मिक और सामाजिक क्रम भी दूषित हो जाते हैं जिनमें गतिहीनता पैदा हो जाती है। व्यापक रूप से धर्म पर भी यह तथ्य लागू होता है। इसी कारण उसके परिष्कार अथवा सुधार का काम निरन्तर होता रहा और वर्तमान तथा भविष्य में भी होता रहना चाहिये। आश्चर्य यह देख कर होता है कि जीवन के साधारण से साधारण क्षेत्र में भी इस वृत्ति से काम लेने वाला मानव धर्म के क्षेत्र में उससे काम लेना नहीं चाहता और वह उसमें जड़ता तथा मूढ़ता का दुराग्रह करने लग जाता है। एक किसान या माली अपने खेत और बगीचे में निरन्तर निरायी करता रहता है और फलतः घास व जड़ी-बूटियों को उखाड़ कर नष्ट करने में लगा रहता है।

साधारण से साधारण ननुष्य भी पुराने कपड़ों को बदल कर नये कपड़े पहनता रहता है और पुरानो को धोना आवश्यक समझता है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध में इस मनोवृत्ति से काम नहीं लिया जाता।

यह धर्म की सबसे बड़ी विजय है कि जो महापुरुष इस काम के लिये प्रगट हुए उन सभी को धार्मिक महापुरुष मानकर उनकी पूजा की गई। वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिये था, क्योंकि प्रत्येक महापुरुष ने अपने से पहले प्रचलित धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों तथा परम्पराओं को परिष्कृत करने का जो महान् कार्य किया उसके कारण उस समय के धर्मपरायण लोगों ने उसको नास्तिक करने में संकोच नहीं किया। परन्तु शीघ्र ही उसकी आस्तिकता की छाप लोगों पर ऐसी जम गई कि उसको धर्मावतार तथा धर्म संस्थापक मानकर पूजा जाने लगा। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण हिन्दू समाज में सबसे

अधिक पूजे गये और धर्मावितार माने गये । इतना ही नहीं गीता के दूसरे अध्याय में वेद और वैदिक कर्मकांड का खण्डन करने के लिये भी उनको बाह्य कहना पड़ा । कारण उसका यह था कि वैदिक धर्म की वास्तविकता को भुलाकर वेदों को एक वाद बना लिया गया और उस वाद के आग्रही लोगों ने 'संसार में और कुछ नहीं है अर्थात् अन्य सब मिथ्या है' का अभियान करना शुरू कर दिया । उन्होंने वैदिक कर्मकांड को एकमात्र भोगैश्वर्य की प्राप्ति का साधन बना लिया । ऐसे वाद कर्ममाण्ड का प्रति-वाद करना ही श्रीकृष्ण के लिये अनिवार्य हो गया । यही स्थिति अन्य धार्मिक नेताओं की भी है ।

भगवान् महावीर स्वामी के समय में वैदिक धर्म ३६३ शाखा-उपशाखाओं में बंट गया था । उनको उन दिनों में अन्य-तीर्थी अथवा प्राबुद्धक कहा जाता था । महावीर ने उन सबका समन्वय करके फिर से धर्म की प्रतिष्ठा की, परन्तु उनके बाद जैन धर्म भी मुख्यतः दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरह पंथ के चार भेदों और अन्तर्गत अनेक उपदेशों में बंट गया, इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी अनेक शाखायें व उपशाखायें फूट निकलीं, न मालूम कितने धर्म उस समय देश में फैल गये होंगे । धर्म के नाम से किये गये विकार और उनके दुरुपयोग को उसका परिष्कार किये बिना दूर नहीं किया जा सकता । मध्यकालीन सन्तों ने भी धर्मान्धता के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया और तत्कालीन जातपात आदि को उन्होंने जड़मूल से मिटाने में अपने को लगा दिया ।

मानव को मानव से अलग करने वाली किसी भी धार्मिक भेदमूलक भावना को उन्होंने प्रश्रय नहीं दिया । लेकिन मानव के

साथ उसकी अंध धारणाएं और अंध भावनाएं कुछ ऐसी जुड़ी हुई हैं कि वह धर्म के प्रकाश पर उनका आवरण डालकर उसको धुंधला बनाने में ही लगा रहता है और संत महापुरुषों को अपना जीवन उस मिथ्या आवरण में लगा देना पड़ता है। मानव की कमजोरी और महापुरुषों के इस मिशन का क्रम इतिहास में निरन्तर मिलता है। वर्तमान में इस मिशन की कहीं अधिक आवश्यकता है। धर्म को जितना इस समय विकृत किया गया है उतना पहले कदाचित् ही कभी किया गया होगा। उसके नाम पर छल-कपट करने में भी पराकाष्ठा कर दी गई है। वैसे अपने विशुद्ध रूप में भी उसके कितने नाम, कितने रूप और कितने भेद पैदा कर दिए गए हैं।

२२०० से कहीं अधिक धर्म के नाम व रूप बताए जाते हैं। ७०० से कहीं अधिक उसके लक्षण अथवा व्याख्याएं उपस्थित की जाती हैं। उसके रूप और व्याख्या को स्पष्ट करने वाले दर्शनों की भी संख्या १२०० से कम नहीं। ऐसी स्थिति में उसके सम्बन्ध में विचार कर साधारण बुद्धि मानव के सम्मुख कुछ निश्चित मार्ग, रूप अथवा नाम उपस्थित करना आवश्यक है। विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन इसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य से किया गया है।

एशिया विभिन्न धर्मों और धार्मिक संस्कृतियों की क्रीड़-भूमि है। भारत एशिया का केन्द्र बिन्दू अथवा आत्मा है। सम्भवतः इसी कारण उसको धर्मभूमि कहा गया है। धर्म के प्रादुर्भाव तथा परिष्कार का जो काम निरन्तर धर्मभूमि भारत में हुआ है वह कहीं और नहीं हो सका। यहाँ के ऋषि, मुनि, संत-साधु, तीर्थ-कर, अवतारी, महापुरुष तथा अन्य धर्मात्मा, महात्मा जीवन भर

इसी कार्य में लगे रहे हैं । उन्होंने धर्म के परिष्कार के लिए अपने महान् जीवन को वैसे ही एक प्रयोगशाला बना दिया, जैसे वर्तमान युग के महान् संत, महात्मा गांधी अपने जीवन को सत्य एवं अहिंस की प्रयोगशाला कहा करते थे ।

धर्म के ये दोनों तत्व उनसे पहले भी विद्यमान थे । परन्तु मानव उनका सही प्रयोग करना भूल गया था । उस प्रयोग का उन्होंने एक उज्ज्वल उदाहरण अपने जीवन में उपस्थित किया । राजनीतिक क्षेत्र में सत्य (सत्याग्रह) तथा अहिंसा (अहिंसात्मक असहयोग) के प्रयोग को सफल बनाकर और उनके द्वारा अपने देश की स्वतन्त्रता का सम्पादन करके उन्होंने हिंसा के प्रतिहिंसा तथा घात, प्रतिघात में आंखें मूंद कर लगे हुए वर्तमान संसार के सम्मुख एक उच्चतम अनुकरणीय धार्मिक आदर्श उपस्थित किया । हमारे महान् देश का इतिहास ऐसे धार्मिक महापुरुषों की अटूट श्रृंखला से ओत-प्रोत है । कभी इस कार्य पर—‘वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः’—की उक्ति चरितार्थ होती थी और धर्म-सम्बन्धी तत्त्व की खोज के लिये बड़े-बड़े धार्मिक वादों अथवा विचारों का आयोजन किया जाता था । उस्तर्कण अनुसंधते स धर्म वेद नेतरः’ की उक्ति इसी बात की द्योतक है कि धर्म को सदा ही तर्क की कसौटी पर कसा जाया करता था । इस प्रकार उसका शोध अथवा परिशोध निरन्तर होता रहता था । परन्तु वह वाद वितंडावाद और यह तर्क कुर्तक का रूप धारण नहीं करता था । प्रायः समस्त भारतीय साहित्य में इस प्रकार तर्क और वाद होने का उल्लेख पाया जाता है ।

महाभारत में न केवल गीता का आख्यान ही श्रीकृष्ण के मुख से इस उद्देश्य से करवाया गया है किन्तु भीष्म पर्व और

शांति पर्व में भी धर्म का आख्यान भीष्म पितामह के मुख से करवाया गया है ।

बौद्ध-काल में अशोक, कनिष्क और हर्षवर्धन के समय में अनेक धर्म सम्मेलन होने का उल्लेख मिलता है । शंकर और मंडन-मिश्र के वाद का भी यह उद्देश्य था । प्राचीन समय के शास्त्रार्थ-तत्त्व-बोध इसी दृष्टि से होते थे । सम्राट् अकबर ने ने दीने-इलाही का सूत्र-पान करने के लिए धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था । जो धार्मिक उत्सव, सम्मेलन अथवा तीर्थ यात्राएं केवल एक रूढ़ि या परम्परा रह गई हैं उनका वास्तविक उद्देश्य धर्म की शोध अथवा परिष्कार करना ही था । कुम्भ और अर्धकुम्भ सरीखे समारोह पुरातन काल के उन धर्म महा-सम्मेलनों की केवल छायामात्र रह गये जिनमें सभी सम्प्रदायों के आचार्य अथवा नेता मिलकर धर्म की मीमांसा और उसकी छान-बीन करके देश-काल के अनुसार नवीन व्यवस्थाएं दिया करते थे । धर्माचार्यों और धर्मगुरुओं का वास्तविक कार्य नई व्यवस्थाएं देकर धर्म को काल तथा देश के अनुसार सदा नया रूप देते रहना था ।

आज की तरह वे केवल पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं और अंध-विश्वासों के प्रहरी न बने रह कर उनको समाज में बद्धमूल करने और उसको जड़ व मूढ़ बनाने का कार्य नहीं किया करते थे । ने उसकी प्रगतिशीलता एवं विकास के धार्मिक तथा सामा-जिक क्षेत्र में अग्रदूत होते थे । परन्तु मानव का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि उन अग्रदूतों के सदियों के प्रयत्न उसकी कमजोरी पर विजय न पा सके और उसकी कमजोरी सदा ही उन पर विजय प्राप्त करती रही ।

अपनी संकीर्ण अंधभावना से वह उनके नाम पर हमेशा ही नये धर्मों, नये सम्प्रदायों, नये मतों तथा नये पंथों को जन्म देता चला गया। आज इसी कारण चारों ओर नाना प्रकार के धर्मों सम्प्रदायों, मतों व पंथों का माया-जाल बिछा दीख पड़ता है। उसको देखकर साधारण जन का माथा धर्म से ही फिर जाता है और वह सबसे विमुख होकर नास्तिकता की शरण ले लेता है। यह धर्म की सबसे बड़ी पराजय है।

शास्त्रार्थों का जो नया सिलसिला शुरू किया गया उसका उद्देश्य तत्त्व की खोज करके धर्म का परिशोध करना नहीं रहा। उनमें वितण्डावाद अथवा कुतर्क का सहारा ले कर एक दूसरे को नीचा दिखाने और अपने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया जाने लगा। वे मानव को और भी अधिक पथभ्रष्ट करने का निमित्त बन गये।

आज युग कुछ बदल रहा है। वह विभिन्नता में एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व के जिस सिद्धान्त को राजनीतिक क्षेत्र में अंगीकार किया जाना आवश्यक हो गया है। यह माना जाने लगा है कि भिन्न-भिन्न मत, विचार, विश्वास, अपराध और धर्म-ग्रन्थ रखते हुये भी एक लक्ष्य को सिद्धि के लिये प्रयत्न किया जा सकता है। सब धर्मों के प्रति समभाव रखने का यही अभिप्राय है। इसी का दूसरा नाम है समन्वय। इसीलिये आज समभाव की दृष्टि से विश्वधर्म सम्मेलन किये जाते हैं। पिछले तीन चार वर्षों से इनका जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ उसी का परिणाम दिल्ली का आयोजन था।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज को इस नवीन

क्रम के सूत्रपात करने का श्रेय एवं यश प्राप्त है। इस सम्बन्ध में आपकी दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट है। बम्बई में पहले आपने सर्व-धर्म सम्मेलन का इसी दृष्टि से आयोजन किया था। उन दिनों में राज्यों के पुनर्निर्माण की समस्या के कारण विभिन्न भाषाओं के प्रश्न ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था।

श्री मगन-भाई दोष और श्री जगन्नाथ जी जैन ने बम्बई के आयोजन को सफल बनाने में रात दिन एक कर दिया। बम्बई के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोरार जी देसाई को भी सम्मेलन के साथ पूरी सहानुभूति रही और उन्होंने ही सम्मेलनों का उद्घाटन सम्पन्न किया था मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने उस सम्मेलन में संदेश के रूप में जो भाषण दिया था वह आज भी वैसा ही महत्वपूर्ण है। उसमें मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में अपनी उदात्त भावना को प्रगट करते हुये सम्मेलन के उद्देश्य और विश्व के प्रति एशिया तथा भारत के दायित्व पर भी विशेषप्रकाश डाला था। उस महत्वपूर्ण भाषण को यहाँ उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक है। उस प्रभावशाली और महत्वपूर्ण भाषण में मुनि जी ने कहा था कि “मेरा विश्वास है कि आत्म-शान्ति के लिये यदि हम धर्म को आवश्यक समझते हैं तो विश्व शान्ति के लिये उसका समन्वय भी अनिवार्य है।”

मनुष्य के जीवन की तीन आवश्यकतायें हैं, शरीरिक, मानसिक और आत्मिक। शरीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राष्ट्रीय और सामाजिक नेता नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं। मानसिक और बौद्धिक तृप्ति के लिये साहित्य—निर्माताओं की साधना है, उसी प्रकार आत्मिक शान्ति के लिये धर्मात्माओं की नैतिक प्रेरणा निरन्तर अपेक्षित है।

पात्रता के अनुरूप धार्मिक क्रियायें भिन्न-भिन्न रहेंगी पर हमारे लक्ष्य की कसौटी भावों की विशुद्ध ही रहेगी। एक परम्परा के मोहवश विज्ञान का विरोध दिखाई देता है तो दूसरी तरफ भौतिक आविष्कारों की चकाचौंध में धर्म के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही है।

मुझे दोनों ही अभीष्ट नहीं हैं। विज्ञान के विरोध से हम यथार्थ और स्वार्थ से अनभिज्ञ रह जाते हैं और धर्म के विरोध से परार्थ और परमार्थ के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। इसलिये संघर्ष का मूल ऐकान्तिक दृष्टि है, उसे छोड़कर निश्चय और व्यवहार, द्रव्य और भाव, बुद्धि और श्रद्धा का समन्वय करने करने वाली अनेकान्त दृष्टि ही जीवन को पूर्ण बन सकती है।

त्यागी बने, पर लोक-सेवा को पाप न समझे। अहिंसक बने, पर रक्षण को पाप न समझे। अपरिग्रही बने, पर दान को पाप न समझे। इस प्रकार द्वन्दों का रहस्य समझ कर सर्वत्र समभाव की दृष्टि रखना ही धर्म का लक्ष्य है।

निर्ग्रन्थों के प्रवचन का एक मात्र धर्म के सम्बन्ध में अमर उद्घोस—

“वत्थुसहावो धम्मो ।”

अर्थात् “स्वभाव ही धर्म है।” धर्म के लिये बड़े-बड़े ग्रंथ अनिवार्य नहीं हैं, अन्तरात्मा की ध्वनि ही हृदय में धर्म का स्वरूप प्रकट करती है। अग्नि को किस ग्रंथ ने ज्ञान दिया है। कि “सुम ज्योतिष्मान् बनी रहो, जल को किस पुराण ने पढ़ाया है कि तुम प्यास बुझाओ। श्वान ने किस श्रुति का संदेश पाया है कि तुम किस के अन्न का भक्षण करते हो उसके घर का रक्षण करो। बिल्ली को किस बायबिल ने बताया है कि चोरी से दूध

पीते समय डरो । हिंसनी ने किस शास्त्र का स्वाध्याय किया है कि जिससे वह अपने पुत्र के प्रति अहिंसक बनी रहती है । इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि धर्म की जानकारी अपनी आत्मा की आवाज सुनने से ही हो सकती है ।

जब मनुष्य ग्रंथों का मोह छोड़ कर निर्ग्रन्थ आत्मा की आवाज सुनेगा, तब उसे राग-द्वेष न होगा , कि जैन आचार्य ने कहा है कि—

“पक्षपातो न मे वीर न च द्वेषः कपिलादिषु

युक्तिमद्वचनं यस्य कार्यः तस्य परिग्रहः ॥”

अर्थात् महावीर में मेरा पक्षपात नहीं है, कपिलादि आचार्यों से मेरा द्वेष नहीं है, युक्ति-युक्त और सत्यता जिसकी वाणी में है वही मुझे स्वीकार्य है ।

इसलिये मतभेद रहे। पर उस कारण से आनन्द की वृद्धि में रुकावट नहीं होनी चाहिये ।

जैनआचार्यों ने विचार-स्वातन्त्र्य का विरोध नहीं किया । इतना ही नहीं, भिन्न अपेक्षाओं से परस्पर विरोधी दृष्टियों का भी प्रामाणिक स्वीकार किया है । दुराग्रह को ही मिथ्यात्व माना जाता है और निराग्रही वृत्ति ही सम्यक्त्व का मूल है । दार्शनिक समन्वय के इस अनेकान्त सिद्धांत को हम राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं को सुलभाने में भी प्रयुक्त कर सकते हैं । तात्पर्य यह है कि हमारे आचार-विचार, प्रेम और सेवा से भरी हुई अहिंसा तथा विवेक और विद्वान का प्रकाश करने वाले सत्य के आधार से निर्धारित किये जाने चाहिये ।

श्रुतियों और उपनिषदों में तथा सूत्रों और पिटकों में दूसरों का विरोध न करते हुये आत्म-संयम को ही धर्म साधना माना

है । महावीर स्वामी ने आज्ञा दी है कि—“अप्पाणमेव जुज्झाहि ।” उपनिषदों में कहा है कि—“तेन त्यक्तेन भुंजीथा ।” ऋग्वेद का वाक्य है कि—“त्यागेन एकं एव अमृतं तत्त्वमानुषः ।” सबका स्वर एक ही है कि “त्याग ही शान्ति और अमरता प्रदान करता है ।”

बुद्ध, ईसा, जरथुस्त और मुहम्मद के अन्तस्तल में प्रवेश करेंगे तो हम आनन्द की वृद्धि के लिये सबका लक्ष्य समर्पण ही मिलेगा । अगर हम सर्वत्र शान्ति और सुखों का साम्राज्य चाहते हैं तो हमें अपने विविध स्वार्थों का बलिदान करने के लिये कटि-बद्ध रहना होगा ।

सर्वधर्म परिषद् सरीखे आयोजनों से हमें साम्प्रदायिक सांहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भावना बढ़ाने का सहज अवसर मिलता है जिससे अखण्ड मानवता की स्थापना के योग्य भूमिका बन सके ।

हमारे एशिया महाद्वीप पर ही सबसे अधिक उत्तरदायित्व है कि वह युद्ध-शान्ति के लिए सांस्कृतिक सम्मेलन का वातावरण तैयार करे । एशिया ही अनेक धर्मों का क्रीड़ांगण रहा है इसलिए धर्मपरिषदों के द्वारा उसे ही युद्ध का बीज मिटाने में अग्रगण्य बनना चाहिए । भारत-चीन मैत्री इस पवित्र उद्देश्य को सफल करने में सहायक सिद्ध होगी । एशिया के सब धर्मों का समन्वय अन्तः राष्ट्रीय ऐक्य का आधारभूत स्तम्भ बनेगा जो यूरोप, अमेरिका आदि देशों की महत्वाकांक्षा को मर्यादित करके सर्वत्र प्रेम का वातावरण बढ़ायेगा ।

अगर हम गम्भीरता से विचार कर तो सभी देश शान्ति चाहते हैं, युद्ध किसी को प्रिय नहीं है, परन्तु परिस्थिति

विश्व-जीवन में ऐसी विसंगतियां आ गई हैं कि बिना इच्छा के भी उन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध होना पड़ता है ।

यह परिषद् अशांत विश्व को शान्ति का संदेश देकर एक समन्वयात्मक व्यापक धर्म की दृष्टि दे सका तो व्यवस्थापकों का प्रयत्न सफल समझ जायेगा ।

भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण के सिद्धान्त के स्वीकार किए जाने से प्रत्येक प्रान्त अपनी-अपनी भाषा का राग अलापने और डफली बजाने में लगा हुआ था । बम्बई इस बात का प्रधान केन्द्र था । महागुजरात और महाराष्ट्र की माँग के कारण भी भाषा की समस्या दिन-पर-दिन टेढ़ी हो रही थी । इन विकट राष्ट्रीय परिस्थितियों में मुनि जी ने सर्व-भाषा सम्मेलन करके इस राष्ट्रीय समस्या का कोई हल ढूँढ़ निकालने का विचार किया । परन्तु शीघ्र ही आपने यह अनुभव किया कि भाषा की समस्या की तह में भी धर्म की वह समस्या मौजूद है जिसके कारण देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ और भविष्य में भी और अधिक विभाजन होने का संकट विद्यमान है । इसलिये आपको सर्वभाषा सम्मेलन के स्थान पर सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अधिक उचित और उपयोगी प्रतीत हुआ । आपके संरक्षण में बम्बई में पहला सर्वधर्म सम्मेलन हुआ ।

उससे अगले वर्ष १९५५ में आपने उज्जैन में चातुर्मास किया और भारत का केन्द्र और अति प्राचीन सांस्कृतिक स्थल होने से आपको वहाँ सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण प्रतीत हुआ । उस समय मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए कहा था कि यदि विश्व, शान्ति चाहता है तो उसे मानवता, सहिष्णुता तथा

अधिकार-मर्यादा और संयम का भाव रखना होगा, यह दिव्य संदेश मानव को धर्म ने दिया है। विश्व-शान्ति के लिये सार्व-भौम राज्य नहीं अपितु सार्वभौम धर्म की आवश्यकता है। आत्मा का शाश्वत संगीत धर्म ही संसार को शान्ति दे सकत है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। धर्म के क्षेत्र में लिंग-भेद अथवा देश-भेदों को कोई स्थान नहीं। मानव जाति एक है, उसका स्वभाव एक है, इसलिए संसार के तमाम धर्मों ने मानव जाति को एक ही कुटुम्ब माना है और सभी मानव गोरे, काले उसके एकमात्र सदस्य हैं। प्रेम, शान्ति, सद्भावना, सहिष्णुता, मित्र-भाव ही सभी धर्मों की मुख्य विशेषतायें रही हैं।

मनुष्य पर शासन उसके विचार करते हैं, धर्म ने मानव के विचारों को मोड़ दिया है, दैवी गुणों के प्रति आकर्षण दिया है।

सम्भव है, विचार-विभिन्नता संघर्ष का कारण बनी हो किन्तु श्रमण महावीर का अनेकान्तवाद उन्हीं आंशिक सत्यों को अखंड सत्य की ओर ले चलने में समर्थ है। बुद्ध का विभज्यवाद शंकराचार्य का समन्वयवाद, ईसा का अनुग्रहवाद, तथा मुहम्मद का प्रत्येक कौम के महापुरुषों को परमात्मीय संदेशवाहक मानने का श्रद्धावाद इसी धार्मिक वैचारिक तथा सैद्धान्तिक महासमन्वय के गान का आरोह कर रहा है।

महात्मा गांधी की महाचावी सत्य, अहिंसा, कबीर की गुण-पूजा, संत नानक की बन्धु भावना, तथा रामकृष्ण परमहंस का मैत्री-भाव उसी धर्म की उद्घोषणा कर रहा है जो अनेक रूपों में रहकर भी एक है, ध्रुव और शाश्वत है।

धर्म का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बहा है। धर्म ने

विश्व को अपनी गोद में आबद्ध किया है। एशिया, धर्मों की जन्मभूमि है। एशिया के तमाम धर्मों के प्रवर्तकों का सार मैं यह समझता हूँ कि मानव-प्रेम, अहिंसा को अपने जीवन का विज्ञान का शास्त्र समझे और बाह्य जगत् से लेकर अन्तरंग जगत तक के समस्त अशिव, अभद्र पाप धो देने में प्रयत्नशील रहे।

क्या यह संदेश मानव को शान्ति दिलाने में अपर्याप्त रहेगा ? मैं इस निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ कि मानव के विराट विश्व की शान्ति धर्म के अन्तरंग में ही अवसिक्त है।

भार की सार्वभौम संस्कृति उस परम शान्तिमय धर्म से अनुप्राणित है। भारत की सदा से यही शान्ति-परम्परा रही है। भारत ने समस्त विश्व में अपने धर्म-दूत को भेजे किन्तु किसी देश पर सैनिक नहीं भेजे और न ही कभी कोई आक्रमण की योजना बनाई। आज समस्त धर्म के माननेवाले धार्मिकों में सहिष्णुता, परस्पर भ्रातृभाव तथा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का काम भी भारत को ही करना चाहिए।

जैसे महाभारत-युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र के स्थान को चुना गया था, उसी प्रकार स्थान की खोज में उज्जैन को इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त माना गया है। क्योंकि—

उज्जैन में कृष्ण का सांदीपनी आश्रम, भगवान् भहावीर का दिव्य घोष, बद्ध का प्रेम वर्णन तथा सिद्धसेन दिवाकर की न्याय-क्तियाँ तो प्रस्फुटित हुई ही हैं, कालिदास की कला का सौन्दर्य-प्रसाधन भी यहाँ ही किया है। जैन, वैदिक तथा बुद्ध की विचार-धाराओं का यह संगम-स्थल ही संसार के तमाम धर्मों के मिलन का पवित्र स्थान रहेगा; यह मेरा विश्वास है।

यह सम्मेलन धार्मिकों में उदारता, सहिष्णुता, सहृदयता के

भावों को पनपायेगा, भौगोलिक, सामाजिक तथा वर्णगत सीमाओं में पिछड़े मानव-हृदय को मानव सार्वभौम संस्कृति का अमृत तो पिलायेगा ही, किन्तु साथ ही आध्यात्मिक दर्शन के सूक्ष्म सत्य को भी वैज्ञानिक जगत के भौतिक आविष्कार के सामने रखने में समर्थ हो सकेगा ।

मुझे पूर्ण आशा है कि अखिल भारत में क्या सारे विश्व में विभिन्न धर्मों के अनुयायी देश व जाति के भेदभाव को छोड़कर भौतिक, बौद्धिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति की उच्च श्रेणी को प्राप्त करके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पारिवारिक जीवन का महत्वसमझ सकेंगे और प्रेम, मैत्री तथा सह्यशीलता से सब धर्मों के प्रति उदार बन कर भारत एवं विश्व में शान्ति बनाये रखने में भाई की तरह सहयोगी बन सकेंगे ।

बम्बई में १९५४ में जब पहले सार्व-धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उसमें विभिन्न १८ धर्म-गुरुओं ने मिलकर वे पांच सिद्धान्त स्थित किये थे जो विश्व-धर्म सम्मेलन की आधार भूमि बन सकते थे । वे यह थे :—

१. आध्यात्मिक वृत्ति, २. सहअस्तित्व, ३. सत्य, ४. अहिंसा, ५. प्रेम

इन्हीं के आधार पर कुछ धर्मों का एक संगठन बन सका और उसी को दिल्ली के विराट् आयोजन की वह पृष्ठभूमि कहना चाहिये, जिसको २६, २७, २८ नवम्बर १९१५ को उज्जैन के सुप्रसिद्ध महाकाल मन्दिर के मैदान में और अधिक सुदृढ़ किया गया; उसके लिये विशेष रूप से अशोक मण्डल का निर्माण किया गया था । मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा के हाथों उसका उद्घाटन किया गया था और राज-

स्थान के अर्थमंत्री तथा अजमेर राज्य के तत्कालीन मुख्य मन्त्री हरिभाउ जी उपाध्याय उसके अध्यक्ष थे । दूसरे दिन क्रमशः संसद् सदस्य सेठ अचल सिंह जी और स्वामी प्रेमानन्द जी सभापति हुए ।

सम्मेलन में भाग लेने के लिये पोलैंड से चार धर्मगुरुओं का एक प्रतिनिधि मण्डल प्रो० निमित्स विक्टर के नेतृत्व में उज्जैन आया था । जापानी बौद्ध भिक्षु श्री टेनजो बटनवे, भोपाल राज्य-विधान सभा के अध्यक्ष श्री सुलतान मौहम्मद, मध्य भारत के राजस्व एवं स्वायत्त शासन मन्त्री श्री सौभाग्यमल जी जैन, स्वामी प्रेमानन्द जी, विनोबा भावे के-कनिष्ठ भ्राता श्री शिवा जी भावे, वृन्दावन के श्री वनमहाराज, हरिद्वार के श्री अखंडा-नन्द जी और श्री शुकदेवानन्द जी, संसद् सदस्य श्री बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन', थियोसो, फिकल सोसाइटी के श्री सत्य नारायण चौधरी, रामजस कालेज दिल्ली के प्राध्यापक श्री इन्द्र चन्द्र शास्त्री, जमियत उल उलमाये हिन्द के मध्य-भारतीय अध्यक्ष मौलाना सिद्दीकी, अमृतसर के ज्ञानी अमरसिंह जी चांकर आदि सहस्रों प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस सम्मेलन करने का का भी निश्चय किया गया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये गये—

१. समस्त विश्व की एक धार्मिक संस्था बनाई जाय, जिससे सारकी समस्त धार्मिक संस्थायें सम्बन्धित हो सकें :

२. धर्म के नाम पर पैदा हुआ साम्प्रदायिक द्वेष मिटाकर समभाव और सहिष्णुभाव उत्पन्न किया जाए ।

३. समस्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये सुविधायें जुटाई जायें ।

४. इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाये ।

इन प्रस्तावों से स्पष्ट है कि नई दिल्ली में विश्व-धर्म परिषद् और अहिंसा शोधपीठ की स्थापना करने का जो निश्चय किया गया है उसकी भावना और कल्पना उज्जैन में भी मुनिजी महाराज के सम्मुख बिल्कुल स्पष्ट थी । वहां उन्होंने सम्मेलन से पूर्व एक प्रेस कान्फरेन्स में विश्व धर्म सम्मेलन और विश्वधर्म विद्यालय की स्थापना का विचार संवाददाताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया था । उनके उस विचार के अनुसार ही नयी दिल्ली के सम्मेलन में उपयुक्त निर्णय किए गये । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उज्जैन सम्मेलन के लिए २६ सदस्य की जो समिति बनाई गई थी उसमें सभी धर्मों के प्रतिनिधि लिये गये थे और उससे मुनि जी के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का स्पष्ट आभास मिलता था । सम्मेलन के विशाल पंडाल का नाम सम्राट् अशोक के नाम पर रखा गया था और उसमें देशभक्त सेठ सोहन लाल जी दूगड़ के हाथों से महात्मा गांधी की मूर्ति स्थापित करवाई गई थी । ये दोनों घटनायें इस बात की सूचक थीं कि सम्मेलन का केन्द्र-बिन्दु अहिंसा था जिसको कि सब धर्मों का निचोड़ कहा जा सकता है । सम्राट् अशोक को युवराज अवस्था में उनके पिता, महाराज बिन्दुसार ने उज्जैन में राज्यपाल नियुक्त करके भेजा था और वहां ही रहते हुए उनको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था । उज्जयिनी की यह ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि सम्मेलन के सर्वथा अनुकूल थी ।

इसी क्रम के अन्तर्गत फरवरी १९५६ में भीलवाड़ा में मध्य-भारत राजस्थान प्रान्तीय सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन बड़ी

सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, इस सम्मेलन के प्रभाव से वहाँ उपस्थित चालीस हजार नर-नारियों ने सर्व धर्म समभाव रखने की प्रतिज्ञा ली ।

इस प्रकार बम्बई, उज्जैन और भीलवाड़ा में दिल्ली के महासम्मेलन के लिये सुदृढ़ पृष्ठ-भूमि तैयार की गई और सम्मेलन के मूल-प्रेरक मुनि सुशील कुमार जी महाराज ने दिल्ली पधार कर उसके लिये कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।

दिल्ली में सम्मेलन के सम्बन्ध में की गई तैयारियों की चर्चा करने से पहले सम्मेलन के उद्देश्यों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है और उसके लिये मुनि जी महाराज के उज्जैन के सम्मेलन में दिये गए भाषण का उल्लेख करना आवश्यक है । इस भाषण में मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये थे वे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । सर्व-धर्म सम्मेलन का उद्देश्य आपने सार्वभौम धर्म की खोज करना बताया था । क्योंकि उसके बिना मानव का जीवन अमृतमय नहीं बन सकता ।

धर्म चिन्तन से ही पूर्व-पश्चिम को एकता की भूमिका के तैयार होने की सम्भावना को प्रगट करते हुये आपने कहा था कि आज जब कि समूचा विश्व एक स्वर से विश्व-शांति के लिये विश्व-राज्य का निर्माण करने जा रहा है, उस समय तो विश्व-धर्म की चर्चा करना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है । विश्व-राज्य कोरा स्वप्न रह जायेगा । आर्थिक और राजनीतिक सुविधाओं को लेकर अथवा युद्ध-विभीत बनकर विश्व-राज्य का पाया सुदृढ़ नहीं हो सकता । विश्व-राज्य का भवन विश्व-धर्म के सहारे ही खड़ा हो सकता है । धर्म-सम्मेलन का आशय कोई

उत्सव करना अथवा प्रदर्शन करना मात्र नहीं है, अपितु सार्वभौम राज्य के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना है जिससे मानव-जाति में एकीकरण की भावना का उदय हो सके ।

धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में तब आपने ठीक ही कहा था कि तत्त्व-रूप से समूचे विश्व का धर्म एक ही है, अनेक नहीं । किन्तु भाषा, भाव आदि अन्यान्य विभिन्नताओं के कारण उसकी अभिव्यक्तियाँ विविध हैं, दृष्टियाँ पृथक्-पृथक् हैं । सभी दृष्टियों के समीकरण से एक ही विराट् धर्म के इस भूतल पर दर्शन होते हैं । मानव एक है किन्तु विचार, व्यवहार और आवश्यकताओं के नाते अनेक हैं । मंगोलियन, कार्कोशियन, आर्यन, अफ्रीकन तथा यौरूपीयन ये सब रूपान्तर मानव में प्रादेशिक सांस्कृतिक भिन्नता के ही कारण हैं । तत्त्व-भेद किंचित् भी नहीं है, क्योंकि समूची मानव-जाति में लक्ष-लक्ष अन्तर होने पर भी ऐसा अखंड-तत्त्व अवश्य है जो एकता, समता तथा बंधुता की वशी बजा रहा है जिसके स्वर में प्रतिव्यनित हो रहा है कि समूची मानव-जाति एक है । वसुधा एक अविभक्त कुटुम्ब है, सब एक ही परिवार के अभिन्न सदस्य हैं, एक ही पूर्वज की सन्तान हैं. हमारे धमनियों में एक ही रक्त गति कर रहा है, वह तत्त्व धर्म है, जो हृदय-ग्रन्थियों का भेदन कर संशय, अविश्वास तथा भेद-दृष्टि के जगत् से पार ले जाकर आध्यात्मिक अभिन्नता के दर्शन कराता है । धर्म साधन अभेद-मूलक है । भौतिक विकास भेद-मूलक विश्लेषण पर तथा धर्म-संश्लेषण पर बल देता है, यही धर्म की उपयोगिता है ।

मानव की धर्म के सम्बन्ध में एक शाश्वत कमजोरी का भी

विवेचन मुनि जी ने बहुत सुन्दर शब्दों में किया था । अपनी कमजोरी को धर्म पर लादकर उसको गूढ़ रहस्य बना देना मनुष्य का कुछ स्वभाव सा बन गया है । उसकी चर्चा करते हुए आपने कहा था कि मानव ने आग्रहवश धर्म पर अर्थों के अम्बार और परिभाषाओं के ढेर लगा दिये हैं । अब भी धर्म की ७०० परिभाषायें अपना-अपना अस्तित्व रखती हैं । प्रत्येक धर्म परस्पर में एक दूसरे को अपूर्ण और स्वयं को पूर्ण मानने का हठ कपड़े हुए हैं । यही कारण है, स्वकल्पित अर्थ के आग्रह के कारण प्रत्येक धर्म ने जगत् के सभी धर्मों से अवांछनीय व्यवहार किया है और कहीं-कहीं पर वह भावना इतनी उद्दाम हो गई है कि जगत् के सभी धर्मों का नाश करके सर्वधर्म की सत्यता प्रमाणित करने के लिये विध्वंश लीला के अकांड तांडव घटित हो गये हैं । यहां यह याद रखना चाहिये कि जगत् में अनेक धर्म हैं, उनका अपना-अपना सापेक्ष दृष्टि से महत्व है । उपयोगिता और आवश्यकता में अनेक धर्म हैं । सभी धर्म दृष्टि-बिन्दु हैं । अहिंसा के साधनों से सत्य की शोध के सभी हिमायती हैं, किन्तु उनकी योग्यता, सामर्थ्य, दृष्टिकोण पृथक् हैं, सभी धर्मों का नाश कर के मानव-जाति को एक बाड़े में बन्द करना कभी भी हितकारक नहीं हो सकता है, सम्भव है कि अपकर्ष का ही कारण हो । न ही किसी व्यक्ति को कि तत्व का नाश करने का अधिकार है । पिछली शताब्दियों में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, कन्फ्यूशियस, लाओत्से, ईसा, मुहम्मद जैसे अवतार, तीर्थकर तथागत तथा पैगम्बरों का मानव दर्शन कर चुका है । ये महा-मानव थे और ये मानवता के ज्वलन्त प्रहरी और आत्मा के दिव्य सन्देश-वाहक थे । इन सबको धर्म-प्रवर्तक कहा जाता है ।

प्रवृत्तियों को सबके प्रतिकूल और अभिलाषित शाश्वत आत्म-अनुकूलताओं को समस्त के लिये हितावह माना था । “आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्” यही इनका सार था । अतः धर्म जैसे व्यापक तत्त्व को हम किसी सीमा अथवा श्रेय-प्रेय के पचड़े में नहीं उलझा सकते । धर्म का अर्थ मूल में स्वभाव है, समाज में सदाचार है, संस्कृति में आदर्श है और सभ्यता में सद् व्यवहार है । कला और साहित्य के क्षेत्र में श्रेय और अभ्युदय है । सन्तों में सर्वोदय तथा मानसशास्त्रियों में स्वस्थता है । धर्म के मूल अनेक हैं, अर्थ अर्गाणत हैं, तात्पर्य एक ही है कि चैतन्य का धर्म चैतन्य है जिसे हम आत्म-स्वभाव कह सकते हैं । आत्मा ही धर्म का स्रोत है और आत्म-स्वभाव के विकास को ही हम परिपूर्ण धर्म मान सकते हैं ।

एक धर्म अनेक में कैसे परिवर्तित हो गया इसका विवेचन करते हुए मुनि जी कहा था कि—

“भारत की सांस्कृतिक चेतना ने जैन धर्म, वैदिक धर्म और बौद्ध-धर्म को स्वरूप दिया है । ईरान और पैलस्टाइन ने पारसी, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है, तथा चीन और जापान ने शिंतो, ताओ तथा कन्फू-शियम मत को आविर्भूत किया है । इन्हीं धर्मों का सम्प्रदायों के रूप में वर्गीकरण हो गया । आज भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं जैसे कि—

वैदिक-धर्म—वैष्णव, शैव, भागवत्, सौरमत, सन्तपंथ, आर्य-समाज आदि ।

जैन-धर्म—दिगम्बर, स्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी ।

बौद्ध-धर्म—हीनयान, महायान, सौतान्त्रिक, वैभाषिक,

माध्यमिक, योगाचार । इतर सम्प्रदाय अनेक हैं ।

पारसी, यहूदी, ईसाई, रोमन-कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, इस्लामी, बौहरा, कादियानी, बहावी, सूफी, कन्फ्यूशियस, ताम्रो, शिन्तो आदि धर्मों का भी यहां अविशेष है । यही क्या महावीर की वाणी सुनते हैं तो वे ३६३ मतों का उल्लेख करते हैं, आरम्भवादी, परिणामवादी, नियतिवादी आदि अनेक आजीवक गोशालिक प्रबुद्ध कात्यायन, पूर्ण कश्यप आदि धर्म-स्थानों का विवेचन प्राप्त होता है । फाहियान ने स्वयं अपने वर्णन में बौद्ध-धर्म के सिवाय ६३ अन्य सम्प्रदायों का वर्णन किया है । इन सबका उद्देश्य-भाव विमुक्ति ही रहा है, फिर चाहे उनका दृष्टिकोण कितना ही आंशिक क्यों न हो ।

संसार के समस्त धर्मों का जन्म एशिया में हुआ है, पूर्वी एशियायी धर्मों का प्रतिनिधि भारत है और पश्चिमी सभी धर्मों के प्रतिनिधि ईरान और पैलस्टाइन हैं । यद्यपि सभी धर्मों का आदर्श आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति ही रहा है तो भी प्रादेशिक भिन्नता के कारण पूर्वी और पश्चिमी धर्मों के कार्य पर गहरा और विभिन्न रूप में प्रभाव पड़ा है । पश्चिम में धर्म को एक सामाजिक संस्कार, जातीय एकता का प्रशस्त पंथ, राष्ट्रीय सुदृढ़ता की दीवार तथा लोक-सुख-परायणता का माध्यम माना जाता है । पूर्व के तमाम देशों में धर्म को आन्तरिक अनुभूति, अत्यन्त दुःख विनाश का हेतु, संयम, तप, समाधि, निदिध्यासन सर्वभूतानुकंपा का प्रदाता और आध्यात्मिक स्वस्थता का कारण माना गया है । पूर्व में सत्त्व भूत के प्रति मित्रता, गुणियों के प्रति प्रमोद, दुखियों की मदद तथा विपरीत वृत्ति वालों के

प्रति माध्यस्थ भाव रखना ही धर्म का सच्चा लक्षण बताया गया है ।

आज एक ओर तो धर्म, वहम, अन्ध-श्रद्धा, कट्टरता, आग्रह, कल्पना थोथी धारणा प्रपंच तथा आडम्बरों का अजायबघर बन गया है और दूसरी ओर गगनगामी, उर्ध्वमुखी, विराट् चिन्तकों के आध्यात्मिक अनुभवों का भण्डार बना हुआ है जिन्हें दैवी गुण कहा जाता है, जिन पर मानवता सांस ले रही है, मनुष्य भूमा बन रहा है, संस्कृति विश्व-व्यापक हो रही है । धर्म की अवस्था ऐसी हो गई है कि सामान्य प्रजा तो धर्म को नितान्त सत्य, वैज्ञानिक नितान्त असत्य तथा अधिकारी लोक-मानस को दास बनाये रखने में उपयोगी धर्म को मानते हैं ।

धर्म पर अधर्म की शैवाल जम गई है । सत्य पर सत्याभास की प्रतिष्ठा हो चुकी है क्योंकि मनुष्य में संशोधक-वृत्ति का अभाव होता जा रहा है । धार्मिकों का विश्वास है कि धर्म में विकास अथवा परिष्कार का अवकाश नहीं है । ऐसे लोग भूल जाते हैं कि प्रत्येक धर्म अपनी आस-पास की सांस्कृतिक भूमिकाओं से अविश्लेष्य रूप से घिरा रहता है । इसलिये जो धर्म ग्रहण और त्याग की वृत्ति को भूल कर अकड़ते रहते हैं, वे असमय में ही नष्ट हो जाते हैं । इसी प्रकार सैकड़ों धर्म, सहस्र सम्प्रदाय, अनेक महाजातियां तथा अगणित सभ्यतायें महागर्त में विलीन हो चुकी हैं, जिन्होंने परिष्कार को स्थान ही दिया था । प्रत्येक क्षण अतीत की बुराइयों को निकालते रहो, नीति तथा तत्त्वानुभव की नई पद्धतियों का निर्माण करते रहो, तभी धर्म मानव के लिये अमरता का मार्ग बना रह सकता है ।

धर्म वह है जो व्यक्ति की अकुण्ठित शक्ति जगा दे, संकल्प के बल को प्रोत्साहन दे, व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो, समष्टि का आत्म बल आत्मसात् करने की प्रेरणा दे, व्यष्टि को विश्व में विलय करने की सामर्थ्य दे अप्रमाद, विवेक तथा अहिंसा की भावना को जागृति दे, वह धर्म हो सकता है। उसे ही हम जीवित धर्म कह सकते हैं। दयाहीन मदद की बात को बाह्य, लौकिक कहने वाले धर्म को हम धर्म कभी भी नहीं कह सकते। धर्म वह नह नहीं है, जो संकीर्णताओं से संकुल रूढ़ियों से निर्जीव, अन्ध-विश्वासों से निश्चेतन, और बाह्य आडम्बरों से भारभूत हो गया हो। वह धर्म नहीं कहा जा सकता, वह तो धर्म पर अभिशाप है।

विश्व के सभी धर्म उसी महापट के एकमात्र तन्तु हैं। जिनसे समन्वित होकर विश्व-धर्म बना है। सभी धर्म उसी वृक्ष की शाखायें हैं जिनसे विश्व धर्म रूपी विश्ववृक्ष का जन्म हुआ है। सभी के मूल में वह प्रेस रस, अखण्ड आनन्द, तथा अलभ्य अमृत बह रहा है जो निरन्तर हमारे ज्ञान, श्रद्धा, चरित्र की अपूर्णता को भर रहा है। जैन धर्म के नन्दी सूत्र में भगवान महावीर ने एक स्थान पर कहा है कि यदि मनुष्य की दृष्टि शुद्ध और सम्यक् बन जाय तो सभी धर्मों और शास्त्रों की उपयोगिता प्रत्यक्ष हो सकती है। माना कि महासमन्ववादी शब्दानुलक्षी नहीं अपितु तत्त्वानुलक्षी होता है। यह वैविध्य में से संवाद, अनेकत्व में से एकत्व तथा भेद में अभेद की प्रतीति करता है। धर्म की सच्ची निष्ठा अभय और अहिंसा है। बुद्धि और हृदय के समन्वय में संतुलन और विवेक की सुसंगति में ही निहित है। निष्ठा और कृति में तदाकारता ला देना धर्मों की अपूर्व सफलता है। ज्ञान और प्रेम, स्वतन्त्रता और समभाव, धर्म के वरदान हैं।

धर्म ने ही मानव को भौतिक आसक्ति से सावधान किया है । विज्ञान शास्त्री मनुष्य को विज्ञान के पिजरे में पशु की तरह बांधना चाहते हैं, यन्त्रवत् बना देना चाहते हैं । यह जीवन का अपमान है । धर्म मानव को स्वयं में ही अपना शस्त्र बनाकर चलाना चाहता है । अतः धर्म की मूल आत्मा एक है । वैदिकों का ऋषभदेव, जैनों का आदिनाथ और ईसा, मुहम्मद का बाबा कादिम एक ही है । हम उसी की सन्तान हैं । इसमें कोई भेद नहीं, भेद मनुष्य में नहीं, दृष्टि में होता है । धर्म श्रद्धालुओं, धर्म को नास्तिकता, जड़वाद और भौतिकवाद से पराभूत न होने दो, धर्म की रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा ! उठो आगे बढ़ो, दुर्बलों की रक्षा करो, निर्बलों पर अत्याचार मत होने दो, अज्ञान हृदयों में ज्ञान की ज्योति जला दो, समूचे विश्व एक कर दो, समूची आत्मा में एकता का अनुभव करो, अपनी अनन्त शक्ति से विश्व कल्याण में जुट जाओ; यही धर्म के अंतर्नाद की ध्वनि ही महासमन्वय और विश्व एकता का एकमात्र माध्यम है !

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ”

यह है परम पवित्र ऊंची भावना, कल्पना और आकांक्षा, जो सर्वधर्म सम्मेलन अथवा विश्व धर्म के आयोजन की मूलभूत आधारशिला है । राजनीतिक नेता भी सह-अस्तित्व अथवा पंच-शील के आदर्शों से अनुप्राणित होकर इसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु अध्यात्मवादी नेतृत्व को उनके प्रयत्नों में से एक अपूर्णता अनुभव होती है और वह उनके प्रयत्नों को पूर्ण बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं । संक्षेप में दिल्ली में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन का यही लक्ष्य अथवा उद्देश्य है । भौतिकवाद

से ऊपर उठकर आध्यात्मिकवाद के आधार पर मानव-हृदयों में आत्मिक एकता की अनुभूति जगाकर विश्व शान्ति अथवा विश्व एकता के स्वप्न को साकार बनाना सम्मेलन का मुख्य ध्येय है। विश्व धर्म परिषद् और अहिंसा शोधपीठ की स्थापना करने का निश्चय इसी लक्ष्य, उद्देश्य अथवा ध्येय की पूर्ति के लिये किया गया है।”

दिल्ली में धर्म सम्मेलन

विश्व धर्म सम्मेलन का सबसे विराट् रूप दिल्ली में सन् १९५७ में प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के रूप में देखने को मिला। यह सम्मेलन १७, १८ नवम्बर को दिल्ली के लालकिले में हुआ, जिसका खुला अधिवेशन रामलीला मैदान में तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद ने किया। इस सम्मेलन में प्रधानमन्त्री पं० श्री जवाहरलाल नेहरू व मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भाग लिया।

इस सम्मेलन में २७ देशों के २६० प्रतिनिधियों ने भाग लेकर इस प्रयास को सफल बनाया। इसमें पारित प्रस्तावों को लेकर तीन वर्षों के बाद बाद पुनः द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन का निर्णय करते हुए मुनि श्री सुशीलकुमार जी ने उसके संयोजन का कार्यभार सम्भाला।

सम्मेलन के लक्ष्यों को व्यावहारिकता प्रदान करने के लिये १८ नवम्बर १९५७ ई० को दिल्ली के ऐतिहासिक लालकिले के अधिवेशन में सर्वसम्मति से दो प्रस्ता पारित हुए।

विश्व धर्म संगम

प्रथम प्रस्ताव के अनुसार धर्म के आधार पर विश्व बन्धुत्व

की भावना के उद्रेक, विकास एवं प्रचार के लिये विश्व धर्म संगम नामक एक संस्था की स्थापना की गई। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार सभी धर्मों में परस्पर धर्म के नाम पर होने वाले मत-भेदों तथा अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझने की भावनाओं का त्याग करने तथा परस्पर प्रेम, सौहार्द एवं सहयोग के लिये प्रयास करने पर बल दिया गया। साथ ही विभिन्न व्यक्तियों, जातियों एवं राष्ट्रों में प्रेम और विश्व धन्धुत्व की भावना की स्थापना एवं विकास के लिये समुचित साधनों, उपायों आदि की जानकारी के उद्देश्यों से अहिंसा, सत्य एवं प्रेम की शक्तियों एवं क्षमताओं के अनुसन्धान और युग-युग के आध्यत्मिक आन्दोलनों एवं विचारों के सूक्ष्म अध्ययन के लिये एक "अहिंसा शोधपीठ" (अहिंसा रिसर्च इन्स्टीट्यूट) की स्थापना की गई।

प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन में रूस के प्रतिनिधि मण्डल के मुफ्ती जियाउद्दीन बाबाखनोव, जापान के प्रतिनिधि श्री इमाईसान, पाकिस्तान के सैयद मुहम्मद काबिल, हंगरी के रैवरेण्ड केरिज वर्की, कम्बोडिया धर्म गुरु भिक्षु दोगफान फ्लानोनो व कोटगटच्यू प्यासला, अमरीका के श्री रिचर्ड ग्रेग तथा होरेस अलैंगजण्डर, बहाई प्रतिनिधि श्रीमती शीरेन बोमान, इंग्लैंड के श्री डब्ल्यू० ए० सिबली, फ्रांस के श्री वुडलैंड कहालर, जर्मनी के डा० फ्रैंडरिक हाईज, आस्ट्रेलिया के श्री ऐरिक बुजल, स्विटजरलैंड की श्रीमती हिताल, डैन्मार्क के श्री ओलुफ इगोरोड, हालैण्ड के श्री जे० विकनाबोर्गे, नार्वे की श्रीमती एच० वर्ग, स्पेन की गास्थ लूथर, इजराइल के डा० ओ० रोबिन्सन, ईरान के श्री ए० ए० हिकमत, अरब के प्रो० मुहम्मद अलमामून, पूर्वी अफ्रीका के श्री मोहनलाल कर्मचन्द, दक्षिणी अफ्रीका की श्रीमती

पिगाबेल, नैपाल के श्री आशाराम शाक्य, तिब्बत के श्री सियासन डी माम, बर्मा के श्री उलान हला, आस्ट्रेलिया की श्रीमती वर्या टौखर, दक्षिणी कोरिया के श्री प्रो० हीशिमी और भारत के श्री भूपराज जैन, स्वामी हरिहरानन्द जी म०, श्री सौभाग्यमल जैन, सेठ गोविन्द दास, संसद-सदस्य, श्री काकासाहब कालेलकर, स्वामी शान्तानन्द जी, सेठ अचलसिंह जी, संसद सदस्य, श्री जैनेन्द्रकुमार, स्वामी नरेन्द्र जी, हाफिज शेख, रफीउद्दीन खादिम, योगीराज हंसजी महाराज, श्री डी० रंगाजी, सन्त तुकड़ों जी श्री एनायुल और, स्वामी स्वयमेन्द्र आश्रम, श्री दोलतराम गुप्ता, महन्त रामकिशोर जी स्वामी गंगेश्वरानन्द जी; श्री बद्रीनारायण शुक्ल, सूफी नजीर अहमद, प० हीरालाल शास्त्रों, महन्त प्रेम दास जी आदि धर्म-प्रतिनिधियों ने भाग लिया ।

कलकत्ता-द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन

मुनि श्री सुशील कुमार जी ने दिल्ली से बंग प्रदेश की ओर पदायात्रा करते हुए कलकत्ता में जाकर धर्म सम्मेलन का प्रचार शुरू किया । १६ जुलाई १९५६ को कलकत्ता के प्रमुख नागरिकों एवं धार्मिक प्रतिनिधियों की एक सभा ने मुनि श्री जी के प्रेरणा से, सर्वसम्मति से यह निश्चित किया कि जनवरी १९६० में कलकत्ता द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाय । इसके लिए एक कार्यकारिणी का गठन हुआ, जिसमें सन्त श्री कृपाल सिंह जी के अलावा दीनदुखी लालबाबा, डा० कालिदास नाग, श्री जसवन्त सिंह लोढ़ा, श्री त्रयम्बक लाल दामाजी, श्री भालचन्द्र शर्मा के अतिरिक्त ११ उपाध्याक्षों एवं ३० सदस्यों की समिति का निर्वाचन हुआ । लोगों ने यह अनुभव किया कि राज-नीतिक समझौते से युद्ध का अन्त सम्भव नहीं है, अनुचित एवं

अस्वस्थ कूटनीतियों से समृद्धि नहीं आ सकती है । अन्ध मूढ़-वादिता, वर्ग-संघर्ष, जाति-विद्वेष पशु एवं अन्य जीवों के साथ निर्दय व्यवहारों से कोई लाभ नहीं हो सकता । अणुबमों, उदजन बमों, राकेट आदि से मानव मस्तिष्क में शान्ति, आनन्द, कल्याण, प्रेम और अहिंसा के श्रोत प्रवाहित नहीं किये जा सकते । अपितु भय और आतंक का वातावरण अशान्ति ही उत्पन्न कर सकता है ।

२ फरवरी १९६० को अपराह्न में वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, सिख, पारसी बहाई आदि धर्मों के मंगलाचरण पाठ से सम्मेलन आरम्भ हुआ । इसके पश्चात् विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने पाठ किया । इस सम्मेलन का उद्घाटन चैतन्य मठ मायापुर के आचार्य श्री त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद् भक्ति विलास तीर्थ महाराज ने किया । इस सम्मेलन में मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अपने प्रेरक भाषण में सभ्यता पर धर्म का प्रभाव, धर्म की वास्तविकता नया संप्रदायवाद, मानव को क्या करना चाहिए ? इन बातों पर प्रकाश डाला । ३ फरवरी १९६० को संसद-सदस्य सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता में पूरी हुई और अहिंसा का दिशा दर्शन करते हुए मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अहिंसा की खिशा-दिशा और उसके कार्य का स्वरूप बताया । इस सम्मेलन में अहिंसा के प्रचार के लिये द्विसूत्रीय योजना बनाई गई, जिसमें 'अहिंसा शोधपीठ' की स्थापना, और अहिंसा विज्ञान कोष' के प्रकाशन का प्रस्ताव पास हुआ । इस सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज ने धर्म के स्वरूप का विवेचन किया और बताया कि—धर्म के अध्ययन में दोष कहाँ है, हमें धर्म में जीवन की खोज करनी चाहिये, और

यह एक खोज का विषय है ।

इस सम्मेलन की तीसरी सभा ३ फरवरी को डा० रमा चौधरी की अध्यक्षता में महिला सम्मेलन के रूप में हुई । इस सभा में 'नारी का समाज में योगदान और उसका सेवा-भाव' को बताया गया । उन्होंने कहा कि 'नारी के योगदान से विश्व में शान्ति की सम्भावनाएँ अधिक हो सकती हैं और नैतिक मूल्य भी बढ़ सकते हैं ।'

शाकाहार का महत्व

४ फरवरी १९६० को सन्त श्री कृपालसिंह जी की अध्यक्षता में 'शाकाहार-सम्मेलन' हुआ जिससे मुनिश्री जयन्तीलाल ने शाकाहार के महत्व को बताया । सम्मेलन के प्रधान वक्ता श्री सिद्धराज जी ढड्डा ने 'अहिंसा और जीवन' विषय पर अपने विचार प्रकट किये । अरविन्द आश्रम पाण्डेचेरी के प्रतिनिधि श्री केशवदेव जी पोद्दार ने भी शाकाहार का महत्व बताया । सन्त श्री कृपालसिंह जी म० ने आहार की सात्विकता, महिमा, सन्यासी महेन्द्र बाबा ने धर्म और आहार के विषय में बताया । इसी समय एक शाकाहार-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ—'इस सम्मेलन का दृढ़ अभिमत है कि—अहिंसक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिये शाकाहार उसकी पूर्व स्थिति है, जिसे मानव को निश्चित रूप से पूरा करना होगा, इससे पहले कि वह शांति-प्रभात की अभिलाषा करे । इसलिये यह सम्मेलन सभी लोगों, राष्ट्रों तथा विश्व के सभी धर्मों से शाकाहार को अपने जीवन-व्यवहार में स्वीकार करने तथा मानव भोजन एवं जीवन-यापन के लिये शाकाहार को प्रोत्साहन देने के लिये अपील करने का निश्चय करता है । साथ ही भोजन, मनबहुलाव या शोक और

उद्योग के लिये होने वाली हिंसाओं को अधिकाधिक कम करने की अपील करता है ।”

इस सभा में ईरान के अबुलफजल हैजगी, संयुक्त अरब गणराज्य के अलअजहर विश्वविद्यालय के श्री अब्दुल मोनियम एस० खताब, वर्मा के श्री चुन्नीलाल दामोदरदास भावसार, श्री सच्चिदानन्द भक्तिप्रभा, संयुक्त मन्त्री गौड़ीय वैष्णव-समाज, वियतनाम के भिक्षु थिच्च मिन्ह चाऊ, थाईलैण्ड के भिक्षु विवेकानन्द ने भाग लिया । मुनिश्री सुशीलकुमार जी महाराज ने शाकाहार के वातावरण, अनुभूति, मांसाहार के कारणों के संबंध में बताते हुये कहा कि—शाकाहार मनुष्य की सात्विकता के लिये अनिवार्य है । योगाचार्य श्रीमद् त्रिपुराचरण ने आहार और स्वभाव के बारे में बताया ।

५ फरवरी १९६० को धर्म-परिसवाद हुआ—जिसके अध्यक्ष ईरानी के श्री अबुलफजल हैजगी और प्रधान अतिथि महामण्ड-लेश्वर स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज थे । इस परिसवाद में योगदान आश्रम के स्वामी क्रियामन्द गिरि और मलाया के स्वामी सत्यानन्द जी ने धार्मिक उदारता का विवेचन किया । विश्व धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने बताया कि धर्म एक सर्वांग जीवन-दर्शन है ।

६ फरवरी १९६० को होने वाले अहिंसा-सम्मेलन के अध्यक्ष डा० राधाविनोद पाल थे । उन्होंने शक्ति-संतुलन, नैतिक प्रश्न, विश्व-समुदाय, शस्त्रीकरण, युद्ध, वैचारिक क्रान्ति को लेकर अहिंसा और समाज के सम्बन्धों का विश्लेषण किया ।

ईरान के बसाई प्रतिनिधि श्री खाबेरी ने अहिंसा और बिज्ञान के सम्बन्ध में बताया । इस सम्मेलन में स्वामी आनन्द,

जस्टिस श्री रामप्रसाद मुखर्जी, आस्ट्रेलिया के श्री ऐडवर्ड ऐल्फप, श्रीलंका के श्री डी० एल० डी० समरसेकर ने भी अपने विचार प्रकट किये ।

७ फरवरी १९६० को कलकत्ता के रणजीत स्टेडियम में विश्व धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रामप्रसाद मुखर्जी ने की । उन्होंने मनुष्य की भौतिक प्यास, विभक्त धर्म और उसका कारण बताते हुए धर्म के समन्वय मन्त्र, जीवन-निर्माण, धर्म और विज्ञान की एकता, यंत्रवाद, संस्कृति के महत्व और मानव-परिवार पक्षों पर प्रकाश डाला ।

८ फरवरी १९६० को खुले अधिवेशन की दूसरी बैठक हुई, जिसका आरम्भ पश्चिमी बंगाल के स्वायत्त शासन-मन्त्री श्री ईश्वरदास जालान ने किया । विश्व धर्म सम्मेलन के अध्यक्ष सन्त श्री कृपालसिंह जी महाराज, कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा० मोहम्मद जुबेर सिद्दीकी, जापान के श्री व्योगो यूरियामा, बर्मा के श्री चुन्ती लाल भावसार, संयुक्त अरब गणराज्य के श्री अबुल मोनियम एम० खताब, मलाया के श्री लोचिन्वान ने प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया ।

दिल्ली—तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन

तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन २६, २७ और २८ फरवरी १९६५ को दिल्ली के रामलीला मैदान में हुआ । २६ फरवरी को प्रातःकाल विषय-निर्वाचन समिति की बैठक हुई । संध्या को सम्मेलन का उद्घाटन श्री मोरारजी भाई देशाई ने किया । जन-रल चेयरमैन श्री साहू शान्ति प्रसाद जैन तथा चेयरमैन श्री अमीरचन्द गुप्ता ने स्वागत भाषण दिये । सम्मेलन के महामन्त्री

डा० बूलचन्दजी ने विश्व-धर्म सम्मेलन का विवरण और प्राप्त संदेशों का वाचन किया। इसी अवसर पर विश्व-धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज, अध्यक्ष सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज, सह-अध्यक्ष बैरन वान ब्लोम्बर्ग और प्रधानमंत्री स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री ने अपने भाषण किये। सम्मेलन के मन्त्री डा० रूपलाल बत्रा ने प्रतिनिधियों का परिचय दिया।

इस सभा में सन्त तुकड़ो जी महाराज, सद्गुरु जगजीत सिंह जी महाराज, मुफ्ती अतिकुर्रहमान, स्वामी चिदानन्द जी महाराज भंते कुशक बकुला, महामान्य आरमेनियन पोप प्रमुख वक्ताओं में थे। तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने अध्यक्षीय भाषण दिया।

२६ फरवरी को प्रातःकाल “धर्म अभियान सम्मेलन” हुआ जिसकी अध्यक्षता सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज ने की। इसके संयोजक आचार्य प्रभाकर मिश्र थे। इस सम्मेलन के विचारणीय विषय धर्म और विज्ञान, धर्म और शिक्षा, युवक समस्याओं का धर्म द्वारा समाधान, सदाचारी जीवनचर्या थे। सायंकाल “एकता सम्मेलन” महामान्य आरमेनियन पोप की अध्यक्षता और श्री फारी वान ब्लम्बर्ग के संयोजन में हुआ। इसमें धर्म क्या है और उसकी आवश्यकता क्यों है, धार्मिक संयुक्त मंच का निर्माण अदि विषयों पर विचार किया गया।

२८ फरवरी को प्रातःकाल “अहिंसा सम्मेलन” सेठ गोविन्द दास, संसद्-सदस्य की अध्यक्षता में हुआ। इसके संयोजक श्री जैनेन्द्र कुमार थे। अहिंसा सम्मेलन में अहिंसक समाज-रचना का आधार, अणु युग में धर्म संगठन की भूमिका के विषयों पर

विचार हुआ । सायंकाल विश्व-धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी प्रमुख वक्ता तत्कालीन भारत की स्वास्थ्य मन्त्री डा० सुशील नैयर थीं ।

इस सम्मेलन में सुशील कुमार जी महाराज ने अपने भाषण में कहा कि “भारत विश्व-बन्धुत्व की भूमि है और यह देश धर्म-सामन्वय का है । इस देश में उदारवाद की भावना मिलती है और साम्प्रदायिक संकीर्णता को दूर करने का प्रयत्न किया जाता रहा है । जैन धर्म में धर्मसहिष्णुता की भावना बहुत महत्वपूर्ण है । यह युग धर्म और विज्ञान का है जिसने विज्ञान के प्रभाव से लोग धर्म के प्रति आस्था नहीं रखते ।” मुनि जी ने धर्म सम्मेलन के सप्तसूत्री उद्देश्य के बारे में बताया ।

(१) धर्म सम्मेलन सारे संसार को धर्म के प्रेम बन्धन में बाँधना चाहता है ।

(२) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्वविद्यालय बनाना चाहता है ।

(३) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्व-कोष सम्पादित करना चाहता है ।

(४) धर्म सम्मेलन सारी मानव-जाति में धर्म के प्रति एक सार्वभौम दृष्टिकोण पैदा करने के लिये धर्म-संहिता (चार्टर) बनाना चाहता है ।

(५) धर्म सम्मेलन समूचे विश्व के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में धर्म-शिक्षा को अनिवार्य करना चाहता है ।

(६) धर्म सम्मेलन सारे मानव-जीवन को और सारे विश्व को धर्म के अमृत से ओत-प्रोत कर देना चाहता है ।

(७) धर्म सम्मेलन विश्व के संघर्षों को अहिंसा के द्वारा

शान्ति और मानव जाति की पुनर्रचना में परिवर्तित कर देना चाहता है। अहिंसा शोधपीठ और उनकी अनेक प्रवृत्तियों को विश्व शांति के लिए सम्पूर्ण रूप से सहयोगी देखना चाहता है। इस सम्मेलन में अमेरिका, जापान, युगोस्लाविया, स्काटलैण्ड, फिनलैंड, हालैंड, पोलैंड, इटली, फ्रांस, जर्मनी के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

दिल्ली—चतुर्थ विश्व धर्म सम्मेलन

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन नई दिल्ली के रामलीला, मैदान में दिनांक ४ से ८ फरवरी, १९७० तक आयोजित हुआ।

सम्मेलन का उद्घाटन प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु परमारणीय फूजी गुरुजी द्वारा किया गया, अध्यक्षता भारत के तत्कालीन उप-प्रधानमन्त्री श्री मोराराजी देसाई ने की। अनेक प्रख्यात व्यक्तियों ने विश्व धर्म सम्मेलन के कार्यक्रम और महत्व पर प्रकाश डाला। विषय समिति की बैठकें चार अलग-अलग भागों में हुईं। विषय निम्न प्रकार थे :—

१. मनुष्य के सर्वांगीण विकास में धर्म का स्थान।
२. अन्तराष्ट्रीय धार्मिक एकता और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए संस्था की स्थापना।
३. धर्मों की अन्तराष्ट्रीय व्याख्या।
४. वर्तमान युग में धर्मों की उपादेयता।

उपर्युक्त चारों समितियों के अध्यक्ष क्रमशः प्रो० राममूर्ति (न्यूयार्क), आचार्य काका साहब कालेलकर, श्री वैंरन फ्रेरी दान ब्लम्बर्ग (यू० एस० ए०) तथा उपाध्याय श्री अमर चन्द्र जी महाराज थे।

निम्नलिखित विशिष्ट व्यक्ति भी सम्मेलन में उपस्थित थे:—

१. कर्नल पिन मुखूरद्वान्त, बैंडकोव्द (थाइलैण्ड) २. श्री अर्व्दीश अफकानिशी, टोक्यो (जापान) ३. स्वामी दयानन्द वैदाचार्य, बड़ौदा (गुजराज) ४. श्री सौकाक सिसुन थोन लाग्रोस ५. श्री मैथीधान डायव्येन, हालैंड ६. श्री बैचंग प्रिरीराध, संस्कृति मंत्रालय; शिक्षा विभाग ७. श्री ए० हायव्यामिशी, (जापान) ८. श्री सौकान्ब सिसु थौम, लाग्रोस) ९. श्री काबल सिट को, डाप्न पेनमा (यू० एस० ए०). १०. मेजर जनरल मोहम्मदमजहरी, (ईरान) ११. श्री कात्य लैन बैस्ली, एथैन्स, (ग्रीस) १२. श्री लौथार डैण्डल पिलम (इण्डिया) १३. वीर डा० मो० डब्ल्यु पिक नौलेटहर स्टार (प० जर्मनी)

प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार महाराज ने अपने भाषण में विश्व धर्म सम्मेलन के कार्य और लक्ष प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उन्होंने धर्म की सच्चे अर्थों व्याख्या करते हुए आज के समय में धर्म की आवश्यकता पर बल दिया।

मुनि जी का भाषण

प्रिय आत्माओं,

विश्व धर्म सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर मैं आंगतुक महानुभावों, धर्माचार्यों, धर्म-प्रतिनिधियों का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। अनेक प्रकार की मार्ग-बाधाओं को पार कर आप इस धार्मिक विश्व-परिवार के सदस्य के रूप में उपस्थित हुए, इसके लिए मैं आप सबका बहुत आभारी हूँ।

विगत १५ वर्षों से विश्व धर्म सम्मेलन, भाईचारे और सहअस्तित्व तथा सह-जीवन की स्थापना के लिए एक ऐसे मंच

के निर्माण में प्रयत्न करता आया है, जहां विश्व के सभी धर्मों के लोग जाति, धर्म और संकीर्णता की परिधि से निकाल कर एक ऐसी आचार-संहिता का निर्माण करें—जिस की सार्व-भौमिकता, विश्व जीवन और व्यापक आस्था का आधार हो। वर्तमान युग की यह सबसे महत्वपूर्ण समस्या है—और यह धर्म सम्मेलन उसी के समाधान में एकान्वित प्रयास हैं।

मेरी इच्छा है कि अमानुषिक कृत्यों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूं। दिन प्रतिदिन तीव्रतम गति से बढ़ती हुई युयुत्सा एवं घोर हिंसा की वृत्तियों से मानव आंतकित होता जा रहा है। उसका भविष्य इतना अनिश्चित एवं अव्यवस्थित हो गया है कि वह अपने अस्तित्व को चिंता और सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। नैतिक शोषण एवं घृणा ने पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द को जुगुप्सामय बना दिया है। विश्व के सभी दार्शनिक समाज-सेवी, इतिहासकार और साहित्यकार इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि हिंसा, भूख, गरीबी और बेकारी के मारे हुए लोग अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हैं। अज्ञान, अभाव और अत्याचार की समस्याओं ने न केवल हमारी आध्यात्मिकता छीन ली है वरन् हमें सीमा, मत, रंग और युद्ध जैसे विवादों में उलझा दिया है।

हम गांधी-शताब्दी-वर्ष में इस सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं—इसलिए ज्वलंत समस्याओं की ओर अनायास ही हमारा ध्यान चला जाता है। यह निर्विवाद है कि विश्व-शान्ति एवं विश्वधर्म बीसवीं शताब्दी को गांधी जी की एक अद्भुत देन है। उनका सन्देश हमें उस ओर प्रेरित करता है जहां करुणा, क्षमा एवं सेवा की महती आवश्यकता है। दरिद्र नारायण की सेवा

गांधी जी के जीवन का महान् संदेश था । सत्य और अहिंसा उनके दिव्य जीवन के पर्याय थे । आज मानव उन सिद्धान्तों को भूलकर समुदाय, भाषा, प्रान्त और अधिकार के लिए जो वीभत्स दृश्य उपस्थित कर रहा है—उन्हें देखकर हम पुनः धर्म की शरण में जाने के लिए विवश हो जाते हैं । एक ओर सर्वनाश का दृश्य उपस्थित करने वाले परमाणु अस्त्रों का अंबार है और दूसरी ओर एक ऐसी मासूम पीढ़ी है, जिसका भविष्य खतरे में है । क्या यह धर्महीनता एवं भोगवाद का घृणित दृश्य नहीं है ?

ऐसी परिस्थितियों में धर्माचार्यों, धर्मानुयायियों, रात्रनीतिकों एवं राष्ट्रनायकों का विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे मानव के हृदय-परिवर्तन को अपना लक्ष्य बनाएं, तभी विश्व में अमन एवं चैन का विस्तार संभव हो सकता है । धर्म और केवल धर्म ही वर्तमान और भविष्य में स्वर्णिम प्रभात का अंशुमाली बन सकता है । विश्व की समस्त शक्तियों का ध्रुवीकरण यदि एक बिन्दु पर हो सकता तो सच्ची मानता की प्राणप्रतिष्ठा में हम पूर्णतया सफल हो सफेंगे और मनुष्य की सर्वविध स्वतन्त्रता का स्वप्न साकार होकर हमारे तन-मन को अधिक समृद्ध एवं शाश्वत बना सकता है ।

विज्ञान बड़ी से उन्नति कर रहा है । विज्ञान की सहायता से पृथ्वी के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन करने के पश्चात् मनुष्य के चरण चन्द्रमा तक पहुंच गए किन्तु विचारना यह है कि क्या उसने पृथ्वी की मानवता को सुखी एवं समृद्ध बना लिया ? कहीं हमारी आंखें नक्षत्रों के प्रकाश की चकाचौंध में न खो जाएं । संभव है, हम सक्षत्रों की दूरी नाप लें किन्तु अपने सहजीवन से

रागात्मक सह-सम्बन्ध स्थापित किए बिना अनंत रश्मि के अमृत-पान से वंचित रह जायेंगे । पारस्परिक संवेदनशीलता के अभाव में हमारा प्रत्येक उपार्जन एवं उत्पादन हमारे लिए अभिशाप बन जाएगा और प्रकृति की लीलास्थली इस धरती को छोड़-कर शून्य में भटक जाएगी ।

लगभग तीन हजार वर्षों के विश्व-इतिहास के विभिन्न आयामों में हमने यही पाया है कि धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण एवं आचार ही सामाजिक संतुलन स्थापित करने में समक्ष रहे हैं । जहां तक समस्याओं के नैतिक पहलू का सवाल है, वह धर्म से पूर्णतया प्रभावित है, क्योंकि समाज की सार्वभौमिकता, प्राणी-वर्ग का तादात्म्य एवं राष्ट्रीय, पारिवारिक एवं विश्वजनीन अखंडता का वही प्राणस्रोत रही है । किसी भी जाति, समाज, या राष्ट्र की उन्नति का वृक्ष धर्म के अमृत से ही पुष्पित एवं पल्लवित होता है । देश, काल और भाव के अनुसार विभिन्न धर्मों ने विभिन्न भौगोलिक परिवेशों में अपना नामकरण कर लिया, जबकि मनुष्य भौतिक साधनों की विषमता का दास मात्र था, किन्तु आज उसकी भौतिक परिस्थितियों में अद्भुत परिवर्तन हुए हैं और वह इस आशय पर आ पहुंचा है कि वह अपनी एकता की घोषणा कर सके ।

आज की भयावह परिस्थिति विश्व में अभय एवं अहिंसा की स्थापना में अपना योगदान करना विश्वधर्म सम्मेलन की तीव्रता आकांक्षा है जिसे उपलब्धि का रूप देना हमारा ध्येय है । विश्व धर्म सम्मेलन का प्रेरणात्मक इतिहास व्यवस्थित रूप में सन् १९५४ से आरम्भ होता है—तभी से उसके भूतरूप का सृजन प्रारम्भ हुआ और सन् १९५७ में एक विशेष विधा के रूप

में इसे प्रस्तुत किया गया। दिल्ली के लाल किले एवं रामलीला मैदान में आयोजित इस समारोह में २७ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और सर्वसम्मति से इसकी विधिवत् स्थापना हो गई। सन् १९६० में इसका दूसरा अधिवेशन हुआ जिसके फलस्वरूप विदेशों में इसकी शाखाएं खोली गई। इस महत्कार्य में विश्व के प्रबुद्ध नागरिकों, साहित्यकारों, धर्म-गुरुओं एवं समाजसेवियों ने अपना अपूर्व योगदान दिया। प्रतिनिधियों तथा धर्माचार्यों के सहयोग से विश्वधर्म सम्मेलन अपना विश्वव्यापी स्वरूप एवं कार्य पद्धति प्रस्तुत कर सका !

पृष्ठभूमि में धर्मज्यौति सन्त कृपालसिंह जी महाराज के अमूल्य सहयोग के हम सदा ऋणी रहेंगे जिन्होंने सन् १५५७ से लेकर अब तक अपनी प्रगाढ़ निष्ठा एवं लगन से विश्व-भ्रमण कर मानवता का संदेश जत-जन तक पहुंचाया। धर्म सम्मेलन उनको अपने अध्यक्ष के रूप में पाकर सदा गौरव का अनुभव करता रहा है। मैं अपने सह-अध्यक्ष वैन ब्लम्बर्ग के अमूल्य सहयोग को भी भुला नहीं सकता हूं

वर्तमान में हमारे समक्ष चतुर्थ सम्मेलन का स्वरूप का स्वरूप है। हमारी आकांक्षा है कि धर्म के आधार पर विश्व-परिवार बनाने में सैंकड़ों हजारों धर्माचार्य एवं कोटि-कोटि धर्मप्रिय जनता, विश्वास, मंत्री एवं सहअस्तित्व के लिये एकजुट होकर प्रयत्न करें। धर्म को उसकी परंपरागत रूढ़िवादिता एवं पार्थक्य की सीमा से बाहर खींचकर उसे सृजनशील केन्द्रबिन्दु पर लाना है जहां मूलभूत एकता का कल्याणकारी स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके। धार्मिक एकता की सहायता से राष्ट्रों की सुरक्षा की गारन्टी हम न दे सके और मानव-जीवन में सामंजस्य स्थापित न किया

गया तो विश्व के सामने एक बहुत कठिनाई आने वाली है। सामाजिक और बौद्धिक-स्तर से मनुष्य कियतना भी ऊँचा क्यों न उठ जाय, यदि वह आध्यात्मिक एकता से वंचित रह जाय तो युद्ध के भयंकर परिणाम ही हमारे सामने आयेंगे। अहिंसा, सत्य और प्रेम धर्म के शाश्वत मूल्य हैं और उन्हीं के द्वारा विश्व में शांति स्थापित हो सकता है।

हमें इस सम्मेलन की फलश्रुति के रूप में निम्नांकित तथ्यों पर विचार करना है:—

(१) धर्म-विश्वविद्यालय की स्थापना—धर्म विज्ञान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिये एक मैसे विश्व-विद्यालय की स्थापना की जरूरत है जहाँ जाति, धर्म और वर्ग के पारस्परिक मतभेद से रहित सब धर्मों के समन्वयात्मक अध्ययन लिये कला, दर्शन, संस्कृति एवं इतिहास, राजनीति-शास्त्र, समाजशास्त्र, नृत्य-शास्त्र को समृद्ध किया जायेगा।

(२) धर्म-विश्वकोष का निर्माण—इस विश्व कोष के अन्तर्गत मानव-संस्कृति, सभ्यता और धर्म का सांगोपग अध्ययन, चिन्तन प्रस्तुत किया जायेगा।

(३) विश्व के सनस्त धर्माचार्यों एवं विचारकों के सुभाव के एक ऐसी आचार-संहिता का निर्माण जिसकी सार्वभौमिकता विश्व मानवता की प्रत्येक इकाई के लिये समाचरणीय एवं मान्य हो। मनुहुय से मनुष्य की दूरी किस प्रकार कम की जात, इसके लिये एक संपर्क स्थल का चयन किया जाय।

(४) संयुक्त राष्ट्रसंघ इस दिशा में प्रयत्नशील है किन्तु स्वस्थ आध्यात्मिकता के अभाव में वह सफल नहीं हो सका है। अतः आवश्यक है कि राष्ट्रों एवं धर्मों के पारस्परिक मेल-जोल

से एकता और सदृभाव की स्थापना की जाय ।

मैं चाहता हूँ कि धर्मप्रतिनिधि विश्व में सुख, समृद्धि एवं सौहार्द की स्थापना के लिए मनुष्य के हृदय में परिवर्तन लाने में अपना महत्वपूर्ण योग दें । विश्व वात्सल्य एवं करुणा की अजस्र धारा से मानवता के कलुष एवं अशिव को धौकर सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् का विस्तार जनमानस एवं जनजीवन में किया जाय तभी संसार के महान् पुरुषों भगवान् महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्म, जरथुस्त, नानक, कम्प्यूशियम आदि के उपदेशों को मूर्तरूप प्रदान करने में हम सफल हो सकेंगे । और ऋषियों के इस महान् संदेश “मिलकर चलें, मिलकर बोलें, मिलकर काम करें और सदा मिलकर रहने की प्रतिज्ञा करें—पर आचरण कर “वसुधैव कुटुम्बकम् आदर्श कौ चरितार्थ कर सकेंगे ।

२२, कोटला मार्ग,
नई दिल्ली

इन पुस्तकों को पढ़कर मन प्रफुल्लित हुआ ।
मुनि श्री सुशीलकुमार जी के जीवन संघर्षों
को बहुत ही उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया
है । आशा है इस पुस्तक द्वारा महाराज जी के
कार्य क्षेत्र का सही ब्योरा जनता को मिलेगा ।

कैलाशचन्द्र जैन
प्रधान, जैन-सभा दक्षिण,
नई दिल्ली (विनयगर)

विश्व में अहिंसा एवं तकनीकी विज्ञान चरम सीमा पर
पहुँच गया है। अब इसके आगे विनाश के सिवा कुछ
नहीं है। ऐसे समय में विश्व में अहिंसा, अप्रिय
ग्रह एवं अध्यात्मिक विकास के विचारों को
विश्व में फैलाने का

मुनि सुशील कुमार जी का योगदान
मानव जाति के कल्याण के लिए संजीवनी
का काम करेगा।

इस महान कार्य के लिए
सहाराज श्री जी के चरणों में
हम सब सदस्यों का सविनय

वंदना एवं हार्दिक मंगल-कामनायें
स्वीकार कीजिये !

मन्त्री :
रोशन लाल जैन

७५१६४

प्रधान :
वकील चन्द जैन

७७०१२

मित्र मिलन

जैन नगर, मेरठ शहर।

फिर वैसा युग आयेगा... उस युग की रूढ़ियों का विरोध
हुआ भगवान महावीर द्वारा । अतः समाज ने कुछ
सुख की सांस ली । आज के युग में पुनः नव-नव
रूपों में हिंसा बढ़ रही है, पुनः एक महावीर का
अनुयायी कृत संकल्प है वैसा ही सुखद
वातावरण लाने को... कर्मरत हैं धर्म के
मूल्यवान खजाने को देश-विदेश में
निःस्वार्थ वितरित करने में !

विदेश से आपकी वापसी पर हम आपका
हार्दिक अभिनन्दन करते हैं ।

अम्बर

नगीन चन्द जैन

बिन्नी टैक्स्टाईल्स शोरूम	ए
५२६, बुढ़ाना गेट (निकट निगार)	व
मेरठ-२ फोन : ७५१३५	म्
७५१६४	परिवार गण

जैनसन्स

जैनसन्स

मुफ्तलाल व लाल भाई	ड्रेस मैटीरियल शोरूम
ग्रुप शोरूम	७४, चौक सदर बाजार
११७/२, बुढ़ाना गेट, मेरठ-२	मेरठ-२ फोन : ७२७५४
(निकट बिन्नी शोरूम)	७५१६४

भारतीय संस्कृति के प्रबल प्रचारक
अहिंसा और सत्य के संदेशवाहक
मुनि श्री सुशील कुमार जी
आधुनिक विवेकानन्द बनें
यही हमारी हार्दिक शुभ कामना है !

शंकर देव

संसद सदस्य

१६, नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली

॥ :—

विश्व एक सरकार

- उल्टा खोपड़ी
- क्या ईश्वर है ?
- इन्द्रा गांधी समग्र रूप में
- सदा निराहारिणी
- माणिक्या योगिनी
- मौलिक आधार याद रख लिये मौलिक कर्त्तव्य

भूल गये

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

कैलाश चन्द जैन

२२, कोटला मार्ग

नई दिल्ली

(विनय नगर)

विश्व वन्दनीय मुनि
श्री सुशील कुमार जी महाराज

जिन्होंने

अपनी विदेश-यात्रा में

असंख्य युवकों को

अहिंसा और सद् आचरण

की दीक्षा दी

हमारा कोटि-कोटि नमन !

प्रधान :

सत्यपाल जैन

मंत्री :

कैप्टन धनराज जैन

यंग फ्रेंड्स एसोशियेशन

जैन नगर, मेरठ ।

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

मेहताब चन्द जैन

मैट्रो पोलिटिन काउन्सलर

२००, किनारी बाजार, नौघरा

दिल्ली-६

कष्ट उठा, जग का हित करते,
सत्र, सुजन, सरिता श्री चन्दन ।
जग उपकारी, मुनि सुशील के,
चरणों में श्रद्धायुत वन्दन ॥

मुनि श्री सुशील कुमार जी के
विदेश-यात्रा से वापस

स्वदेश पधारने पर

हार्दिक वन्दन के साथ अभिनन्दन !

कमल हैण्डलूम कलाथ डीलर
सुभाष बाजार, मेरठ ।

फोन : ७४८८१

७४६२६ निवास

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश यात्रा

से

वापस लौटने पर

हरियाणा जैन समाज

की ओर से

हार्दिक अभिनन्दन !

जिनेन्द्र कुमार जैन

कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय

कुरुक्षेत्र

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश-यात्रा

से

वापस लौटने पर

शुभ कामनायें !

तेज प्रकाश कौशिक

ग्रहिसा भवन,

शंकर रोड, नई दिल्ली

सोने की परीक्षा अग्नि में होती है !

किन्तु,

सन्त की परीक्षा

निन्दा-प्रशंसा के क्षणों में होती है !

मुनि श्री सुशील कुमार जी

ने निन्दा एवं प्रशंसा का समान भाव से
स्वागत कर

सहस्र-सहस्र जनों की

अद्धा प्राप्त की है !

परम संत को हार्दिक वन्दन !

मन्त्री ।

प्रधान ।

जुगल किशोर जैन

प्रीतम चन्द जैन

स्वाध्याय सभा

जैन नगर, मेरठ ।

जैन जगत के ज्योतिर्धर हे,
विश्वधर्म के हे नव प्राण ।
तुमने ऊंचा किया निरन्तर,
भारत भूमि का अभिमान ॥

मुनि सुशील कुमार जी महाराज

के

४२ सप्ताह की विश्व-यात्रा पश्चात स्वदेश आगमन

पर

हार्दिक मंगल कामनाओं

के साथ

चिरंजीशाह राजकुमार

तीर्थंकर महावीर मार्ग, मेरठ ।

तार : महावीर

फोन : ७५५८०-७३१२६ आफिस

७३८४७-७५६२७ फैक्ट्री

७२३१० निवास

मुनि श्री सुशील कुमार जी

को

श्र. भा. चौरासिया ब्राह्मण महासभा

की ओर से

स्वदेश वापसी पर

शुभ कामनायें !

बिहारी लाल शर्मा

बी० ए०

जनरल सेक्रेटरी

बाजार सीताराम, दिल्ली

परम सन्त
मुनि श्रेष्ठ श्री सुशील कुमार जी

की

सफल विदेश यात्रा

के बाद

उनके स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

श्रॉल इन्डिया दिगम्बर भगवान
महावीर २५०० वां निर्माण
महोत्सव सोसायटी (मेरठ सम्भाग)

मंत्री मेरठ सम्भाग
प्रेम प्रकाश जैन

अखिल भारतीय प्रधान मंत्री
सुकुमार चन्द जैन

मानव मात्र के प्रति जिनके हृदय में
असीम प्रेम एवं सद्भाव हैं

उन

मुनि श्री सुशील कुमार जी

के

सफल विदेश-यात्रा के पश्चात् स्वदेश आगमन

पर

शत्-शत् वन्दन !

(ला० नन्दूशाह वकील चम्ब जैन)

ओसवाल कलाथ स्टोर

गुदड़ी बाजार, मेरठ शहर ।

फोन : ७५२२०

७७०१२ निवास

महाराज श्री मुनि सुशील कुमार जी

के

विदेश भ्रमण की वापसी पर

शत् शत् नमून !

प्राणी मित्र

आनन्द राज सुराणा

नई दिल्ली

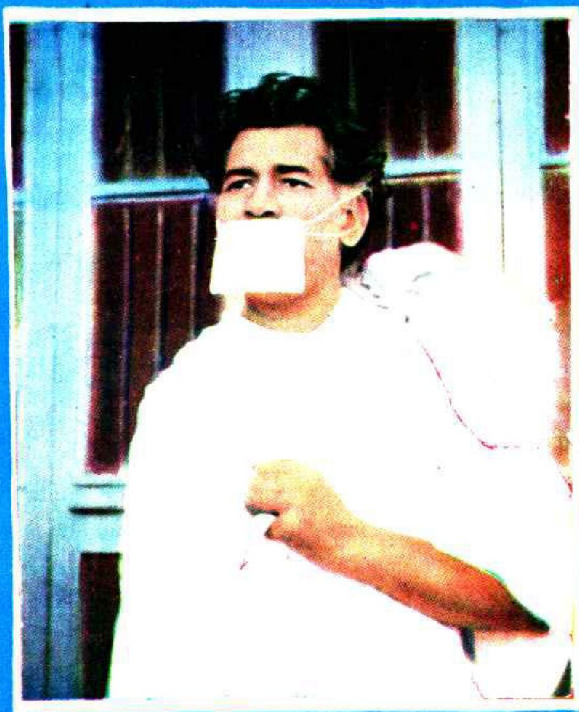
अपनी विदेश-यात्रा में
 हर नारी को
 मातृत्व की सही दिशा की दीक्षा
 अहिंसा का सन्देश
 और
 नारी गरिमा को उन्नत करने की राह
 दिखाने वाले
 परम भारतीय संत
 विश्व वन्दनीय मुनि
 श्री सुशील कुमार जी
 का
 हार्दिक अभिनन्दन !

मंत्री :
 श्रीमती विद्यावन्ती जैन

प्रधान :
 लीलावन्ती जैन

महिला मंत्री संघ
 जैन नगर, मेरठ

परतक प्रणेता
मुनिवर: सुभाष जी



संपादक: जय प्रकाश शर्मा
अध्यक्ष: नरेश चंद जैन

कमला पोकेट बुक
मेरठ-२.